प्रकाशक—

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

(श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)

२५ रामतीर्थनगर, लखनऊ

मुद्रक—

बजरंगबली गुप्त

श्रीसीतारामप्रेस, जालिपादेवी, बनारस।

निवेदन

अपने राम-प्रेमी पाठकों से हमें यह कहते हुए कुछ दुःख और कुछ लज्जा का अनुभव होता है कि हिन्दी में प्रथम स्वामी राम के जो ग्रन्थ रामतीर्थ-ग्रन्थावली के २८ भागों के नाम से प्रकाशित हुए थे उनका द्वितीय संस्करण अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है। इधर असाधारण परिस्थितियों के कारण हमारे प्रकाशन का कार्य बिलकुल रुका रहा। अब राम की कृपा से हम स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश भाग ६ को प्रेमी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं। लेख व उपदेश का चौथा भाग सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ था। इस बीच हम और कोई भाग तैयार न करा सके। अब हमें स्वामी राम के समग्र ग्रन्थों (८ भागों) में से केवल पांचवां और आठवां भाग और प्रकाशित करना है, जिससे यह द्वितीयावृत्ति पूर्ण हो जायगी। और फिर हम इन ग्रन्थों की तृतीयावृत्ति प्रारम्भ करेंगे। इस बार भाषा और छपाई-सफाई सभी दृष्टियों से संस्करण को उत्तम से उत्तम बनाने का विचार है। राम की कृपा हुई और हमारे उदार राम-प्रेमी सज्जन इसी प्रकार सहयोग करते रहे तो हमें विश्वास है कि हम शीघ्र ही अपने उद्देश में कृतकार्य होंगे।

मंत्री, रामतीर्थ प्रतिष्ठान

विषय-सूची

छठा भाग

वेदान्त-शिखर से

संसार पर

एक विहंगम दृष्टि

स्वामी रामतीर्थ

दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तुसत्तावाद का समन्वय

१३ जनवरी १९०३ को गोल्डन गेट हाल अमेरीका में दिया हुआ व्याख्यान।

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में एकमात्र वास्तविक और आदर्श आत्मन्!

आज के व्याख्यान का विषय बड़ा ही दुरूह, बहुत ही कठिन है। केवल वही इसे भली भाँति समझ सकेंगे। जो पहले से दर्शन शास्त्र से थोड़े-बहुत परिचित हैं। आप सबके सब थककर और खिन्न होकर चले जायँ, अथवा सारा संसार सुनने आवे, इस बात से राम को कोई प्रयोजन नहीं। सत्य तो लोक-प्रियता की सम्पूर्ण अभिलाषाओं से ऊपर रहता है। वैज्ञानिक नियम संसार पर शासन करते थे, आज भी कर रहे हैं, और आगे भी विश्व का नियंत्रण करते रहेंगे, लोग चाहे उन्हें जानें या न जानें, वे लोक-प्रिय हों या न हों। सर आईजक नियूटन द्वारा आविष्कृत होने से पहले भी

गुरुत्वाकर्षण का नियम इसी तरह काम करता था। ऐसे भी वैज्ञानिक नियम हो सकते हैं जिनका पता लोगों को अभी न लगा हो, परन्तु फिर भी वे दुनिया का नियंत्रण करते हैं। खान में पड़ा हुआ एक अति उत्तम हीरा चाहे किसी के हाथ न आया हो, परन्तु हीरे की दमक कहीं चली नहीं जाती। लोग उसे उठाकर अपने मस्तक पर धारण करें अथवा पूर्णतः उसकी उपेक्षा करें, हीरे का इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

विषय कठिन है; किन्तु यदि आप एकाग्र होकर बारीकी से उसे सुनेंगे तो समझ भी सकेंगे। ऐसा न सोचिये कि ऐसे दुरूह, दार्शनिक, और विचारात्मक विषयों पर बोलना व्यर्थ है, हमें इनकी जरूरत नहीं, हमें तो ठोस नगदी चाहिए, हमें तो कुछ व्यावहारिक विषय चाहिए। राम पहले व्यावहारिक विषयों पर भाषण करता रहा है, किन्तु विचारात्मक और सैद्धान्तिक विषयों की भी जरूरत होती है। कोई भी तथ्य, कोई बात ठीक ढंग से समझने के लिए उसका रहस्य बतलाने वाला एक यथार्थ मन्तव्य होना ही चाहिए। किसी बात, किसी क्रिया में अभ्यस्त हो जाना तो, आप जानते ही हैं, अपनी शक्ति को केवल कार्य रूप में परिणत भर कर देना है, उससे अधिक कुछ नहीं, इतने से उस क्रिया का भेद नहीं समझा जा सकता। जब आपको कुछ लिखना होता है, तब आपकी लेखनी चलने से पूर्व सम्पूर्ण विषय कल्पना रूप से आपके मन में अवश्य आ जाना चाहिए। कल्पना सदा कर्मशीलता से पहले चलती है। जब कभी आपको किसी जगह जाना होता है, तो चलना केवल आपके अभ्यास की बात होती है, किन्तु आपके मन

में अपनी नसों और हरकतों का नियंत्रण करने का कोई संकल्प न हो तो एक पग भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। कोई विद्यार्थी महाविद्यालय में तब तक नहीं जाता, जब तक विश्वविद्यालय का विचार पहले ही से उसके मन में नहीं हो, जब तक यह ज्ञान उसे नहीं हो कि किस प्रकार की शिक्षा उसे वहाँ मिलनी है। कोई चोर जब बराबर किसी पड़ोसी विशेष की धनसम्पत्ति की चर्चा सुनता रहता है, तब यह निरन्तर मिलने वाली सूचना, हृदय में बसनेवाला विचार, कार्य रूप में परिणत होने लगता है और चोर उस अमीर पड़ोसी के घर में सेंध लगाने की हिम्मत करता है। तात्पर्य यह कि किसी प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति के बिना, अपने इच्छित काम के संबंध में पहले ही से किसी प्रकार के ज्ञान प्राप्त किये बिना, कोई काम नहीं किया जा सकता।

इसीलिए राम श्रोताओं के कानों में आत्मा के महत्व का ढोल पीटता है, निरन्तर हृदयों में इस तथ्य को उतारने का यत्न करता है जिससे यह बात दिन प्रतिदिन आपके हृदयों में घर करने लगे। आपके मनों में हर घंटे बैठने लगे, तब आप देखेंगे कि मनोविज्ञान के नियमों के अनुसार, यह मानसिक क्रिया-कलाप जो व्यर्थ की कल्पना-जल्पना जान पड़ती है, अत्यन्त श्रेष्ठ क्रियाशीलता में बदल जाती है। आप देखेंगे कि आपका यह ज्ञान परमानन्द और परम कल्याण के रूप में रूपान्तरित हो रहा है।

आज का विषय है "वेदान्त की दृष्टि में दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तुसत्तावाद का समन्वय कैसे होता है"। दूसरे शब्दों में विषय है कि वेदान्त के मत में हमें संवेदन ज्ञान कैसे होता है? यह विषय तत्वज्ञानियों के लिए बड़े मार्के का है।

पहले आपको थोड़े में यह बताया जायगा कि दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु-सत्तावाद हैं क्या। इन विषयों के विस्तार में जाने का हमें अवकाश नहीं है। किन्तु संक्षेप में वस्तुसत्तावाद उस विश्वास या मन्तव्य को कहते हैं जो इस संसार को वैसा ही ठीक उसी रूप में स्वीकार करता है जैसा वह दिखाई पड़ता है और दृष्टि-सृष्टिवाद में संसार वैसा नहीं माना जाता जैसा हमें जान पड़ता है; संसार है तो परन्तु जैसा प्रतीत होता है वैसा नहीं। वस्तु सत्तावाद के अनुसार चीजें ठीक वैसी ही होती हैं जैसी हमें जान पड़ती हैं, वे वास्तव में सच्ची होती हैं। दृष्टि-सृष्टिवाद की कई शाखायें हैं। एक तो आत्मगत-कल्पनावाद (Subjective Idealism) जिसके समर्थक बर्कले (Berkeley) और फिश्टे (Fichte) हैं। दूसरा विषयाश्रित कल्पना-वाद (Objective Idealism) जिसके समर्थक अफलातूँ (Plato) और कैंट (Kant) हैं; तीसरा शुद्ध केवल कल्पनावाद जिसका समर्थन हेगेल (Hegel) और शेली (Shelley) आदि उसी श्रेणी के दार्शनिकों ने किया है। वस्तुसत्तावाद के समर्थक बेन (Bain) और मिल (Mill) आदि अनेक दार्शनिक हैं। दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु-सत्तावाद की इन विभिन्न शाखाओं की व्याख्या हम यहाँ नहीं करेंगे। आज के व्याख्यान में हम बर्कले (Berkeley) के आत्मगत-कल्पना-वाद, या अफलातून (Plato) और कैंट (Kant) के विषयाश्रित कल्पनावाद, या हेगेल (Hegel) अथवा शेली (Shelley) के शुद्ध कल्पनावाद की आलोचना नहीं करेंगे। हम इनकी चर्चा केवल वहीं तक करेंगे जहाँ तक इस सम्बन्ध में वेदान्त का दृष्टिकोण आसानी से हरेक की समझ

में आने में सहायता मिल सकती है।

विषय आरम्भ करने से पहले दो शब्दों आधार और आधेय, ज्ञाता और ज्ञेय, द्रष्टा और दृश्य 'आधार' (ज्ञाता) और 'आधेय' (विषय) की व्याख्या आवश्यक है। आपको जानना चाहिए कि इन दोनों शब्दों के कई अर्थ ग्रहण किये जाते हैं। [व्याकरण में ये एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।] साधारण बोलचाल में इनका दूसरा अर्थ लिया जाता है। और दार्शनिक भाषा में इनका अपना एक विशेष अर्थ है। तत्वज्ञान की भाषा में 'आधार' का अर्थ है ज्ञाता, और 'आधेय' का अर्थ है ज्ञेय पदार्थ। आप यह पेंसिल देखते हैं, यहाँ पेंसिल तो ज्ञेय पदार्थ है और आप पेंसिल के देखनेवाले ज्ञाता हैं। देखनेवाला ज्ञाता कहलाता है और जो वस्तु देखी जाती है वह ज्ञेय कहलाती है। साधारण बोलचाल में 'ज्ञाता' शब्द का अर्थ मस्तिष्क या बुद्धि है; किन्तु वेदान्त के अनुसार बोलचाल बुद्धि या मस्तिष्क ज्ञाता नहीं कहलाता, वेदान्त के अनुसार बुद्धि भी विषय अथवा ज्ञेय है। आप जानते हैं कि जो वस्तु जानी जा सकती है वह विषय अथवा ज्ञेय होती है। आप बुद्धि को जान सकते हैं, आप उसके सम्बन्ध में विचार और तर्क कर सकते हैं, उसके नियमों का निर्धारण कर सकते हैं। जिस अंश तक आप बुद्धि के विषय में तर्क कर सकते हैं, उसकी धारणा कर सकते हैं उस अंश तक अवश्य ही बुद्धि या मस्तिष्क 'विषय' अथवा 'ज्ञेय' है, 'ज्ञाता' नहीं। वास्तविक ज्ञाता पर विचार और तर्क नहीं हो सकता, वास्तविक ज्ञाता देखा नहीं जा सकता, वह विषय नहीं बनाया जा सकता। भला जाननेवाला कैसे जाना जा

सकता है, उसे कौन जाने? इसलिये वास्तविक ज्ञाता या जो जाननेवाला हो सकता है, या बनी हुई वस्तुओं का ज्ञाता, बनी हुई वस्तु हो जाय, तो वह ज्ञेय या दृश्य बन जायगा ज्ञाता नहीं रह सकता। यद्यपि साधारण बोलचाल में 'आधार या ज्ञाता' शब्द से मन, बुद्धि, या मस्तिष्क का बोध होता है, तथापि वेदान्त के अनुसार वास्तविक आधार या वास्तविक ज्ञाता केवल, एक अनन्त आत्मा है, जो सब देहों में एक रूप, एक ही है। इस सम्बन्ध में एक संस्कृत शब्द को याद रखना उपयोगी होगा। 'आधार' को संस्कृत में द्रष्टा कहते हैं, और 'आधेय' संस्कृत में दृश्य कहलाता है। और संस्कृत में वास्तविक द्रष्टा है राम या आत्मा। अंग्रेजी में 'आत्मा' शब्द का पर्यायवाची या तो शोपनहावर (Schopenhauer) का "विल" (Will संकल्प) हो सकता है; या हेगेल (Hegel) का 'हार्ड इंटेलेक्ट' (Hard Intellect, ठोस बुद्धि) अथवा ऐबसोल्यूट इंटेलेक्ट (Abso'ute Intellcet = शुद्ध बुद्धि)। आप जानते होंगे कि हेगेल और शोपनहावर का आपस में घोर विरोध है, वे एक दूसरे को फूटी आँख नहीं देख सकते। किन्तु वेदान्त उन दोनों को मिला देता है। वेदान्त उन्हें बताता है कि शोपनहावर जिसे विल या संकल्प कहते हैं, वही वास्तव में हेगेल की "शुद्ध बुद्धि" है। वेदान्त में इस शुद्ध बुद्धि या शुद्ध आत्मा के लिए एक शब्द ब्रह्म है जिसका अर्थ है शुद्ध संकल्प, शुद्ध चित्, शुद्ध सत् और शुद्ध आनन्द अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द।

सो वास्तविक द्रष्टा तो शुद्ध आत्मा है। और व्यावहारिक द्रष्टा बुद्धि या अन्तःकरण में प्रकाशित होती हुई

आत्मा है। इस प्रकार वास्तविक आत्मा बुद्धि उपकरण के संयोग से द्रष्टा कहलाती है।

वस्तुसत्तावादी अपने पक्ष के समर्थन में क्या तर्क देते हैं, और दृष्टि-सृष्टिवादी अपने पक्ष के समर्थन में किन मुख्य मुख्य युक्तियों का उपयोग करते हैं? यह एक लम्बा विषय है; हम बहुत ही संक्षेप में इस पर विचार करेंगे। 'बर्कले' का खण्डन करने के लिए हमारे पास समय नहीं है। वह एक प्रमुख कल्पना या दृष्टिसृष्टि-वादी है। बड़ी उमंग के साथ वह अपने तत्वज्ञान का प्रारम्भ करता है, और जब तक वेदांत दर्शन के पथ पर चलता रहता है, तब तक कल्पना की ऊँची-ऊँची उड़ानें भरता है, किन्तु वेदान्त दर्शन की दिशा छोड़ते ही वह रास्ता भूल कर एक चक्करदार भँवर में फँस जाता है। यह बड़ा ही रोचक विषय है। एक ऐसा विषय है कि यदि राम को कभी विश्वविद्यालय के अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामने भाषण करने का अवसर मिले तो वह इस पर अवश्य विचार करेगा। बर्कले के तत्वज्ञान के उत्तरांश और पूर्वांश में घोर विरोध है। कैसे वह अनेक आत्माओं को मानने के लिए बाध्य हुआ। उसे कैसे इस विश्व के नियंत्रण के लिए साकार या सगुण ईश्वर के मानने की आवश्यकता हुई है। और कैसे उसके तत्वज्ञान के अनुसार संसार में किसी भी वस्तु का अस्तित्व तब तक नहीं माना जा सकता, जब तक कोई आत्मा उसके निकट देखने के लिए न हो। और न जाने कितनी ही बेतुकी बातें उसे अपने दर्शन में घुसेड़नी पड़ी है। किन्तु, यह ऐसा विषय है जिसे आज हम नहीं उठाना चाहते हैं। दृष्टि-सृष्टिवादी या कल्पनावादी जो अनेक तर्क पेश करते हैं, उनमें ये दो या

तीन ही महत्वपूर्ण हैं। सबसे पहला यह कि अपनी निजी क्रिया-शीलता के बिना आप न किसी वस्तु को देख सकते हैं और न उसका भान ही कर सकते हैं, केवल द्रष्टा की क्रिया-शीलता ही आपको इस दुनिया में किसी वस्तु का बोध करने या किसी पदार्थ को इन्द्रियगम्य कराने में समर्थ होता है। आप कुछ लिख रहे हैं, आपका ध्यान उस कलम पर जमा हुआ है, वहीं आपके सामने से एक साँप निकल जाता है, किन्तु आप उसे नहीं देखते, आपके लिए साँप साँप नहीं रहता, आपकी दृष्टि में साँप कभी होता ही नहीं। नहीं है, बस, कल्पनावादी कहते हैं कि यदि आपकी क्रिया-शीलता, आपके मन की अथवा द्रष्टा की क्रिया-शीलता न होती तो कहीं कोई वस्तु न होती। जब आप सोते हैं, तब द्रष्टा क्रियाशील नहीं होता इसलिए आसपास की आवाजें भी सुनाई नहीं पड़तीं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी आंखें सोते समय बन्द नहीं होतीं। उनके नेत्रों के सामने सभी वस्तुएँ मौजूद रहती हैं; उनके नेत्रों के अन्तर्पट (retina) पर वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है, किन्तु वे उन पदार्थों को नहीं देखते। कल्पनावादियों का कहना है कि यदि आपका मन निष्क्रिय है, द्रष्टा अपनी क्रियाशीलता प्रकट नहीं करता तो तुम्हें वस्तुएँ नहीं दिखाई पड़तीं। क्या मन के व्यापार के बिना आप इस दुनिया की कोई वस्तु देख सकते हैं? नहीं। अच्छा, जरा अपने मन के क्रियाशील किये बिना यह मेज अथवा वह दीवार देखने की चेष्टा कीजिये, राम के शब्द सुनने का यत्न कीजिये, किसी भी वस्तु के बोध का यत्न कीजिये। क्या ऐसा आप कर सकते हैं? क्या बिना सोचे, बिना मानसिक संकल्प के आप कोई वस्तु देख सकते

है ? आप नहीं देख सकते। इसलिए कल्पनावादी कहते हैं कि यह सारी दुनिया विचार के सिवा और कुछ भी नहीं है, यह सम्पूर्ण संसार केवल विचार का विस्तार मात्र है। आप कैसे जानते हैं कि संसार का अस्तित्व है? अपनी इन्द्रियों के द्वारा। किन्तु इन्द्रियाँ स्वयं किसी पदार्थ का बोध नहीं कर सकतीं। जब उनका मन से संयोग होता है तभी उन्हें बोध होता है, दूसरे शब्दों में इन्द्रियाँ नहीं देखतीं वरन् इन्द्रियों के द्वारा मन देखता है। अब आपको याद होगा कि मन या बुद्धि ही द्रष्टा है और मानसिक व्यापार के बिना आप कुछ नहीं सुन सकते, आप कुछ नहीं देख सकते, आप कुछ नहीं कर सकते। मानसिक क्रियाशीलता के बिना आप किसी वस्तु को इन्द्रियगम्य नहीं कर सकते। इसलिए कल्पनावादी कहते हैं, "ऐ दुनिया के लोगो! तुम जो इस दुनिया को सत्य कहते हो और दुनिया की इन वस्तुओं को स्वतन्त्र रूप से सत्य मानते हो, और अपने आपको क्यों भूलते हो ऐसी भूल न करो। इन सब वस्तुओं की सृष्टि तुम्हारे द्वारा होती है, या वे तुम्हारे विचार द्वारा बनती हैं वास्तव में तुम इनके बनानेवाले हो।" यही कल्पनावादियों का कथन है और ऐसा दिखाई पड़ता है कि कल्पनावादी कुछ-कुछ वेदान्तियों से मिलते जुलते हैं। परन्तु राम आपसे कहता है कि इन सब कल्पनावादियों (बर्कले, अफलातून, हेगेल, कांट, फिक्टे, शेली, शोपनहावर) की विचारधारा में वेदान्त के कुछ सिद्धान्त हैं। किन्तु संवेदन की कल्पना (हमें पदार्थों का बोध किस प्रकार होता है) के सम्बन्ध में वेदान्त का मत इन सबसे कहीं आगे है। इन लोगों में आपस में एक दूसरे से झगड़ा है, उनमें परस्पर तू तू मैं मैं और विरोध है, किंतु

वेदान्त दर्शन इन सबकी संगति अथवा समन्वय कर देता है। ये लोग द्रष्टा रूपी बुद्धि को बड़ा महत्व देते हैं, उसे आवश्यकता से अधिक गौरवान्वित करके सबका मूल बताते हैं। किन्तु वेदान्त इस द्रष्टा रूपी बुद्धि को सर्वश्रेष्ठ सर्वेसर्वा नहीं मानता, जैसा कि इनमें से अधिकांश दार्शनिक करते हैं हमें तो सत्य को केवल सत्य होने के कारण ग्रहण करना है।

कल्पनावादियों का दूसरा तर्क यह है कि यह दुनिया, जिसे लोग साधारणतः वास्तविक या सच्चा मानते हैं. वास्तविक या सच्ची न समझी जानी चाहिए, क्योंकि दुनिया जैसी दिखाई देती है वैसी केवल इन्द्रियों द्वारा ही तो प्रकट होती है, और संसार को, जैसा कुछ हमें जान पड़ता है, वास्तव में सत्य हम इन्द्रियों के आधार पर ही कहते हैं। किन्तु इन्द्रियाँ विश्वसनीय गवाह नहीं हैं। उनकी साक्षी पर विश्वास नही किया जा सकता। उदाहरण के लिए आँख का मामला ले लीजिये। चींटी की आँखें मनुष्य की आँखों से भिन्न देखती हैं। हाथी की आँखों को मनुष्य की आँखों की अपेक्षा वस्तुयें बहुत बड़ी दिखाई देती हैं। मेंढक की आँखों को पानी में चीजें स्पष्ट दिखाई देती हैं, परन्तु बाहर हवा की चीजें धुँधली, एक प्रकार के धुन्ध से ढकी जान पड़ती हैं। अब किसकी आँखों पर विश्वास किया जाय? मनुष्य की आँखों पर या चींटी की आँखों पर? यदि बहुमत से निर्णय किया जाय, तो चींटियों की संख्या कम नहीं है। बहुमत उनकी ओर है। यदि आपके नेत्र सूक्ष्मदर्शक यंत्र के सिद्धान्त (microscopic principle) पर बना दिये जायँ, यदि आँख की पुतली आँख के अन्तर्पट पर

एक दूसरे ढंग से लगा दी जाय तो दुनिया आपके लिए बिलकुल भिन्न हो जायगी। यदि नेत्र का अन्तर्पट दूरदर्शक यंत्र के सिद्धान्त पर लगा दिया जाय, तो सारी दुनिया का नकशा ही बदल जाय। आपने एक खिलौना देखा होगा जिसे 'देखो और हँसो' कहते हैं, यह एक हास्यजनक दर्पण होता है जिसमें दो कूर्मपृष्ठाकार काँच लगे होते हैं. इसके द्वारा देखने से संसार की सब वस्तुयें कौतूहलजनक और हास्योत्पादक हो जाती हैं। अत्यन्त सुन्दर चेहरा भी "देखो और हँसो" के शीशे द्वारा देखने मे इतना लम्बा हो जाता है कि ठोड़ी जमीन को छूने लगती है और सिर मानो शनि-ग्रह को छूता है। इसी में होकर यदि दूसरे ढंग से देखो तो चेहरे की लम्बाई तो वही रहती है, किन्तु एक कान पूर्वी भारत तक पहुँचता है, और दूसरा कान चीन की खबर लेता है। अच्छा, यदि आँखें इस सिद्धान्त पर बनी हों, तो दुनिया बिलकुल बदल जायगी। यही हाल श्रवण एवं दूसरी ज्ञानेन्द्रियों का है। यदि शिराओं या पुट्ठों को भिन्न तरह पर लगा दिया जाय, तो सम्पूर्ण संसार भिन्न प्रकार का हो जाय, सारी दुनिया ही बदल जाय। आप कह सकते हैं कि हमारे मज्जातन्तु और नसें और ज्ञानेन्द्रियाँ जिस तरह बनी हुई हैं, वैसी ही रहनी चाहिएँ। सो बात भी नहीं है। विकासवाद का नियम बतलाता है कि उनमें परिवर्तन हो रहा है। इसलिए कल्पनावादी कहते हैं कि दुनिया जैसी जान पड़ती है, वैसी नहीं है; दुनिया जैसी प्रतीत होती है, उसका वह रूप मिथ्या है; दुनिया जैसी हमें मालूम पड़ती है असत्य है, माया है, भ्रान्ति है।

उनके भी बहुतेरे तर्क अपने पक्ष का समर्थन करते हैं।

किन्तु यदि उन पर हम विस्तारपूर्वक विचार करें, तो केवल कल्पनावाद में ही अनेक रातें बीत जायँगी।

अब हम वस्तु-सत्तावाद पर आते हैं। वस्तुसत्तावादी कहते हैं, "ओ कल्पनावादियो! तुम गलती पर हो, तुम बिलकुल भूल में हो. यदि हमें दिखाई देनेवाली हर एक वस्तु हमारी ही बनाई हुई, हमारी ही कल्पना-प्रसूत है. यदि आपका यह कथन सत्य है, तो ऐ कल्पनावादियो ज़हाँ दीवार है, वहाँ जरा घोड़ा तो पैदा कर दीजिये। ऐसा कीजिये जिससे वह दीवार घोड़ा मालूम पड़ने लगे। ऐ कल्पना-वादियो! यदि संसार केवल इस छोटे से द्रष्टा की बुद्धि या मन का खेल है, तो इस रूमाल को सिंह में बदल दो, या इस पेंसिल को एक भव्य भवन बना दो।" वस्तु-सत्तावादी कहते हैं, "ऐ कल्पनावादियो! तुम्हारी बात बिलकुल ठीक नहीं है, दुनिया सच्ची है। दीवार दीवार है और इसी कारण आपकी ज्ञानेन्द्रियों को वह सदा दीवार के रूप में भान होती है, कल वह तुमको घोड़ा रूप नहीं जँचेगी।"

कल्पनावादी वस्तु-सत्तावादियों के इन आक्षेपों का उत्तर देते हैं। इन आपत्तियों के उत्तर उनके पास हैं। किन्तु हम दोनों ओर के सब प्रश्नोत्तरों को नहीं लेंगे। कल्पनावादी कहते हैं कि यह यह प्रश्न केवल समय का है। आप अपनी कल्पना से चाहे जिस वस्तु की रचना कर सकते हैं। जब आप मृत प्राणियों का ध्यान करने लगते हैं, तब मृत-प्राणी आपको दिखाई देते हैं। हम जब किसी वस्तु की कल्पना करते हैं, तो वह कल्पना हमें प्राप्त होती है। उनका कहना है कि क्या अपने स्वप्नों में हम वस्तुओं की सृष्टि नहीं करते हैं? हमारी कल्पना इन वस्तुओं का अनुभव करा देती है।

कल्पनावादियों के ऐसे ही उत्तर हैं और वस्तु-सत्तावादी इ उत्तरों के प्रत्युत्तर हैं। अब हम इन प्रश्नोत्तरों के ब्यौरे में नहीं पड़ना चाहते।

वेदान्त भी संसार को अपना संकल्प, अपनी सृष्टि, मानता है। परन्तु संसार को अपना संकल्प, अपनी सृष्टि मानते हुए भी आप वेदान्त को कल्पनावाद नहीं कह सकते। राम के मुख से यह बात बहुत ही विलक्षण-सी जान पड़ती है। इसे फिर दुहराया जायगा। यूरोप और अमेरिका के लोग समझते हैं कि वेदान्त एक प्रकार का कल्पनावाद है, और यूरोपियनों की लिखी हुई जो पुस्तकें राम की दृष्टि में आई हैं प्रायः उन सब में वेदान्त को कल्पनावाद कहा गया है। किन्तु राम आपसे कहता है कि इन लोगों ने वेदान्त को समझा नहीं है। वेदान्त वैसा कल्पनावाद नहीं है जैसा बर्कले या अफलातून का कल्पनावाद है। वेदान्त इससे कहीं ऊँचा है, कहीं श्रेष्ठ है।

कल्पनावादी संसार को इस क्षुद्र द्रष्टा, तनिक-सी बुद्धि, या छोटे से मन पर आश्रित करते हैं। किन्तु वेदान्त जब यह कहता है कि संसार मेरा विचार या संकल्प है, तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि संसार इस क्षुद्र द्रष्टा, नन्हीं सी बुद्धि, छोटे से मन का संकल्प है। यह तो एक परिवर्तन-शील वस्तु है, यह तो स्वयं एक रची हुई वस्तु है, यहाँ पर बर्कले ने यह कहकर भयंकर भूल की है कि स्वप्न स्वप्नद्रष्टा की रचना होती है। उसने भूल यह की कि स्वप्न-जगत् के द्रष्टा को उसने जाग्रतावस्था के द्रष्टा से एक कर दिया। आप जानते हैं, जैसा कि कल रात को बतलाया गया था स्वप्नावस्था का द्रष्टा जाग्रतावस्था के द्रष्टा से भिन्न होता है।

स्वप्नलोक का द्रष्टा तो उसी तरह का एक पदार्थ है जिस प्रकार कि स्वप्नलोक की अन्य वस्तुएँ। जब आप जागते हैं, तब जाग्रतावस्था का द्रष्टा भी उसी श्रेणी का है जैसी कि जाग्रतावस्था की वस्तु। बर्कले ने जाग्रतावस्था के द्रष्टा और स्वप्नावस्था के द्रष्टा को एक समझा। संसार जाग्रतावस्था के द्रष्टा या स्वप्नावस्था के द्रष्टा की रचना नहीं है। संसार मेरे वास्तविक स्वरूप, वास्तविक ईश्वर, ब्रह्म, शुद्ध आत्मा की रचना है।

अब हम संवेदन सम्बन्धी (हमें बाह्य वस्तुओं का भान कैसे होता है) वेदान्त मत की चर्चा करेंगे।

वेदान्त कल्पनावादियों से कहता है, "ऐ कल्पनावादियो! तुम्हारा यह कहना यथार्थ है कि इस दुनिया के सारे नाम और रूप के सम्पूर्ण गुण और धर्म द्रष्टा की क्रियाशीलता के बिना प्रकट नहीं हो सकते।" यही बात फिर दुहरायी जायगी। विषय बड़ा क्लिष्ट है और आपको खूब ध्यान देना चाहिए। वेदान्त कल्पनावादियों से कहता है, "तुम्हारा इतना कहना ठीक है कि द्रष्टा की क्रिया बिना इस संसार के नाम और रूप प्रकट नहीं हो सकते, पदार्थों के लक्षण, गुण और धर्म हमारी बुद्धि या मन अथवा द्रष्टा की क्रियाशीलता पर निर्भर हैं। यहाँ तक तुम ठीक हो। किन्तु तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं कि तुम्हारे इस छोटे से द्रष्टा, तुम्हारे इस छोटे से मन से बाहर कुछ और नहीं है।" वेदान्त वस्तु-सत्तावादियों से कहता है, "तुम्हारा यह कहना ठीक है कि इस गोचर जगत् अथवा नाम-रूप-संसार का प्रादुर्भाव बिना किसी बाहरी सत् वस्तु की क्रिया के नहीं हो सकता।" आप जानते हैं कि वस्तु-सत्तावादी कहते हैं कि यह दृष्टि-

गोचर जगत् हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर किसी बाहरी क्रिया-शीलता के कारण प्रकट होता है। इन्द्रियों पर पदार्थों की क्रिया होती है और हमें उनका बोध होता है। वेदान्त कहता है, ठीक है। किसी प्रकार की बाह्य क्रियाशीलता के बिना हमें पदार्थों का बोध नहीं हो सकता। यहाँ तक वस्तु-सत्ता-वाद ठीक है। किन्तु वेदान्त के अनुसार वस्तु-सत्तावाद वहाँ गलती करता है जब यह कहता है कि हमारे सम्पूर्ण बोध का एकमात्र कारण सम्पूर्ण बाह्य क्रियाशीलता है, इसमें द्रष्टा का कुछ भी हाथ नहीं। इसे हम और स्पष्ट किये देते हैं। इस संसार का कोई भी विषय, कोई भी वस्तु लो, उदाहरण के लिए, यह पेंसिल ले लो। इस पेंसिल के रंग का कारण क्या है? आप कह सकते हैं, द्रष्टा की क्रिया के साथ ही बाहर की प्रतिक्रिया उसका कारण है। यदि तुम्हारी आँखों को कोई रंग नहीं सूझता, तो तुम्हें पेंसिल का यह रंग भी न सूझेगा। पेंसिल का रंग उसका एक गुण या धर्म है। फिर पेंसिल का वजन लो। अब यह वजन और रंग दोनों बदलने वाली चीजें हैं। यदि हमारी आँखों में पांडु-राग हो, तो पेंसिल हमें दूसरे ही रंग की दिखाई पड़ेगी। और यदि हम इसे यहाँ न तौल कर बड़ी ऊँचाई पर, चन्द्रलोक में या किसी गहरी खान में तौलें, तो इसके वजन में अन्तर पड़ जायगा। आप जानते होंगे कि किसी वस्तु का भार यदि लंदन में तौला जाय तो कुछ और होगा और भारतवर्ष में तौला जाय तो कुछ और होगा। तात्पर्य, भार भी परिवर्तनशील है, रंग भी परिवर्तनशील है।

आप जानते हैं कि वही पानी जाड़े में छूने पर गरम जान पड़ता है और गर्मी में छूने पर शीतल लगता है।

क्यों ? क्योंकि द्रष्टा या बोध करनेवाले में पानी छूने के समयों में गर्मी-सर्दी के भिन्न अंश होते हैं, यद्यपि पानी में गर्मी-सर्दी के अंश लगभग वही रहते हैं। इस प्रकार हमारे हाथों की गर्मी-सर्दी के भेद के कारण जल में गर्मी-सर्दी के अंशों का भेद मालूम पड़ता है। इसी प्रकार द्रष्टा के भेदों के अनुसार पदार्थ के गुणों में भी भेद हो जाँयगे।

अब यह पेंसिल काहे की बनी है ? वर्कले और कुछ अन्य दार्शनिकों के अनुसार, केवल गुणों और धर्मों की पोटली के सिवा यह कुछ भी नहीं है। इन गुणों को अलग कर दीजिये, शेष कुछ भी नहीं बचेगा। किन्तु केन्ट के अनुसार वस्तु स्वयं इसके पीछे है। और अफलातून के अनुसार भी स्वयं वस्तु इसके पीछे है, जिसे वह विचार मात्र कहता है। इस तरह यहाँ कुछ गुण हैं। ये सब गुण द्रष्टा अथवा मन की क्रियाशीलता के कारण प्रकट होते हैं। किन्तु हमारा कहना है कि जब इस प्रतिक्रिया से पेंसिल में ये गुण पैदा हुए, उससे पहले कुछ असलियत वहाँ थी। यह बात और भी साफ की जायगी, और यदि तुम राम से कहोगे, तो फिर दुहरा दी जायगी। यह सत्य है कि वेदान्त के अनुसार पेंसिल में इन सब गुणों का प्राकट्य द्रष्टा के कारण से होता है, परन्तु द्रष्टा की क्रियाशीलता कैसे उत्तेजित हुई ? यह एक प्रश्न है। बाहर कोई वस्तु अवश्य होनी चाहिए जिसने द्रष्टा पर प्रभाव डाला और द्रष्टा में क्रिया या प्रतिक्रिया उत्तेजित की, और जब द्रष्टा में क्रियाशीलता उत्तेजित हुई तब ये गुण प्रकट अथवा विकसित हुए। यहाँ हम यह नहीं कह सकते कि इस द्रष्टा की क्रियाशीलता से पहले ही इन गुणों ने ही स्वयं मन पर प्रभाव डाला और मन की क्रिया

या प्रतिक्रिया उत्तेजित की। हम ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि ये गुण तो मन की क्रिया या प्रतिक्रिया के बाद प्रकट होते हैं। इसलिए बाहर कोई चीज़ अवश्य होनी ही चाहिए, पेंसिल में कुछ वास्तविकता अवश्य होनी चाहिए जिसने तुम्हारी आँखों पर काम किया, प्रभाव डाला, जिसने उसका नाम लेने तुम्हारे कानों पर काम किया। जिसने चखते समय तुम्हारी जिह्वा पर काम किया जिसने स्पर्श के समय तुम्हारे हाथ पर काम किया बाहर ऐसी कोई वस्तु होनी ही चाहिए, जो आँख, कान, और नाक सब पर काम करती है। इस पेंसिल को खा जाओ तो तुम्हारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। फिर तुम कैसे कह सकते हो कि बाहर कोई तथ्य है नहीं ? बाहर भी कुछ तथ्य है, और जब वह मनुष्य की इन्द्रियों पर काम करता है तब इन्द्रियाँ मन को ख़बर पहुँचाती हैं, और मन प्रतिक्रिया करता है। तभी पदार्थ के गुण या धर्म बाह्य स्थूल रूप में प्रकट होते हैं। यह ठीक इस प्रकार होता है। जैसे यह एक हाथ और यह दूसरा हाथ है। केवल एक हाथ कोई शब्द नहीं कर सकता। दोनों हाथों से (ताली बजाकर देखो यों) आवाज़ पैदा होती है। यहाँ एक ओर से क्रिया हुई, और दूसरी ओर से प्रतिक्रिया, और परिणाम हुआ शब्द। यह सारंगी का तार है। तुम इस पर अपनी उँगुली चलाते हो, और इससे आवाज़ पैदा होती है। तुम्हारी उँगली ने क्रिया की थी, और तार ने प्रतिक्रिया। अथवा आप कह सकते हैं, कि तार ने क्रिया की और उँगुलियों ने प्रतिक्रिया, तब आवाज़ पैदा हुई। इसी तरह, एक लहर इस तरफ से आई और दूसरी आई उस तरफ से, दोनों लड़ गईं और फेन पैदा हो गया। यहाँ एक

दियासलाई है, और वहाँ वलुआ-कागज़ है। वलुआ-कागज पर लगाओ, दियासलाई की चोट से लपट पैदा हो जायगी। क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों ओर से होती है। यहाँ बिजली का एक धनात्मक स्तम्भ है, और वहाँ ऋणात्मक स्तंभ, एक दूसरे के पास पहुँचते ही हमें बिजली की चिनगारियाँ दिखाई देती हैं, एक आवाज़ सुनाई पड़ती है। इस इंद्रियगोचर दृश्य की उत्पत्ति दोनों ओर की क्रिया और प्रतिक्रिया से होती है।

इस प्रकार वेदान्त के अनुसार, तुम्हारी बुद्धि में वह वस्तु-स्वयं विद्यमान है, जिसे हम आत्मा कहते हैं। सच्ची आत्मा तुम्हारी बुद्धि में विद्यमान रहती है, इस संसार के हर एक पदार्थ में वही वस्तु-स्वयं या वास्तविक आत्मा है। इस पेंसिल में भी असलियत है, अथवा आप कह सकते हैं कि वस्तु स्वयं है, जो किसी प्रकार जानी नहीं जा सकती, जो सब गुणों या धर्मों से परे है। उधर तुम्हारे मस्तिष्क में भी वस्तु-स्वयं या वास्तविक आत्मा है। अब एक ओर बाहर पेंसिल में विद्यमान वस्तु-स्वयं या निर्गुणत्व या ब्रह्म और दूसरी ओर मस्तिष्क में विद्यमान निर्गुणत्व मानों दो हाथ हैं। ज्योंही उनकी परस्पर टक्कर होती है त्योंही पेंसिल के गुणों की स्थापना हो जाती है, वे फेन की तरह प्रकट हो जाते हैं; एक लहर एक ओर से, और दूसरी लहर दूसरी ओर से आकर टकराती है और फेन पैदा हो जाता है, अर्थात् ये गुण प्रकट हो जाते हैं। आप कह सकते हैं कि धनात्मक बुद्धि ध्रुव में है और ऋणात्मक पेंसिल में, ज्योंही दोनों ध्रुव परस्पर समीप आते हैं हमें गुणों के अथवा इस दृश्य रूप जगत् के दर्शन होते हैं। वेदान्त की भाषा में, द्रष्टा

और दृश्य के मिलते ही हमें पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। एक ओर द्रष्टा है और दूसरी ओर दृश्य। पेंसिल में भी वास्तविक स्वरूप या आत्मा है, और बुद्धि में भी वास्तविक स्वरूप या आत्मा है, और दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया नाम-रूपात्मक दृश्य का चमत्कार पैदा करती हैं।

इस प्रकार कल्पनावादियों का या दृष्टि सृष्टि-वादियों का यह कहना ठीक है कि द्रष्टा की क्रियाशीलता के बिना कुछ भी नहीं देखा जा सकता। किन्तु उनका यह कहना अयथार्थ है कि द्रष्टा की यह क्रियाशीलता अकेले ही इस गोचर जगत् की सृष्टि करता है, क्योंकि उनके इस कथन से विज्ञान का एक सबसे अधिक अटल और सुदृढ़ नियम भंग होता है। वह नियम इस प्रकार है—

क्रिया के ठीक बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया के बिना कोई क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। कल्पनावादी जब यह कहते हैं कि इस संपूर्ण संसार की सृष्टि केवल इस क्षुद्र द्रष्टा की क्रियाशीलता से होती है, तब वे इस तथ्य को बिल्कुल भूल जाते हैं कि किसी दूसरी ओर से प्रतिक्रिया हुए बिना कोई कार्य हो नहीं सकता। इसी प्रकार वस्तु-सत्तावादियों का यह कहना ठीक है कि इस संसार में स्वयं अपनी एक सत्ता है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि वह केवल इस क्षुद्र द्रष्टा के आधार पर अवलम्बित है। संसार में स्वयं एक सत्ता है— यहाँ तक तो वे ठीक हैं, किन्तु जब वे कहते हैं कि इस जगत् का नाम रूपात्मक दृश्य स्वयं ही सत्य है, और अपने ही आधार पर ठहरा हुआ है, तब वे भूल करते हैं, क्योंकि यह दृश्य रूप जगत्, इस दुनिया के भेद-भाव और सांसारिक पदार्थों के गुण सभी नाम-रूप द्रष्टा की क्रियाशीलता पर

ठीक उतना ही निर्भर हैं जितना कि वे दृश्य के भीतर विद्यमान वस्तु-स्वयं या वास्तविकता की प्रतिक्रिया पर निर्भर करती हैं।

अब यहाँ एक बड़ी आपत्ति उठती है। तुम क्रिया और प्रतिक्रिया की बात करते हो। भला, अनन्त में क्रिया और प्रतिक्रिया कैसे हो सकती है? अच्छा, देखिये क्रिया और प्रतिक्रिया की चर्चा हमने इसलिए की थी कि उसी शब्दावली का प्रयोग किया जाय जिसे साधारणतः लोग समझते हैं। हमने क्रिया-प्रतिक्रिया की चर्चा इसलिए की कि एक ओर हमारा संकेत बुद्धि के संयोग में आये हुए गुणातीत संकल्प या शक्ति और दूसरी ओर पदार्थ के संयोग में आये हुए गुणातीत संकल्प या शक्ति से पदार्थ के संयोग में आई हुई निर्गुण सत्ता मस्तिष्क या बुद्धि के संयोग में आई हुई निर्गुण सत्ता के विपरीत क्रिया अथवा प्रतिक्रिया करती है। एक दृष्टान्त लीजिए। इस पात्र में आकाश है, और उस पात्र में भी आकाश है। वास्तव में आकाश दोनों में एक ही वस्तु है, किन्तु आप कह सकते हैं कि आकाश इस बर्तन में प्रकट हो रहा है और उस बर्तन में प्रकट हो रहा है। वास्तव में आकाश अखण्ड है, उसके टुकड़े या विभाग नहीं किये जा सकते। देश या आकाश कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसका व्यवहार तुम इस हाथ के रूमाल की तरह कर सको। आकाश एक और वही एक वस्तु है, आकाश अखंड है। आकाश में विभाग की कल्पना संभव नहीं है, दार्शनिक कैंट के अनुसार आकाश द्रष्टात्मक और दृश्यात्मक दोनों है, वह बाँटा या काटा नहीं जा सकता। इसी प्रकार वास्तविक आत्मा या निर्गुण अनन्त कभी काटा या बाँटा नहीं जा सकता। किन्तु

जब इस दुनिया के पदार्थों के सम्बन्ध में हम उसकी चर्चा करते हैं, तब हमारा यह कहना न्यायसंगत होता है कि वह इस पदार्थ, उस पदार्थ अथवा बुद्धि से संयोग पाता है। और इस या उस पदार्थ के साथ संयुक्त होने पर उसमें क्रिया और प्रतिक्रिया की चर्चा की जाती है। उदाहरण के लिए इस हाथ का आकाश जब इस पात्र के आकाश तक पहुँचता है, तो दोनों एक हो जाते हैं। वास्तव में वे दोनों सदा से एक थे। किन्तु अब तुम्हारे नेत्रों के लिए भी हाथ का आकाश पात्र के आकाश के साथ तदात्म हो गया।

इस प्रकार वेदान्त कहता है कि जब द्रष्टा के आधार में स्थित निर्गुण सत्ता, दृश्य के आधार में स्थित निर्गुण सत्ता से तदात्म हो जाती है तब द्रष्टा और दृश्य में कोई अन्तर नहीं रहता, दोनों एक हो जाते हैं।

क्रिया और प्रतिक्रिया वास्तव में आत्मा में नहीं होती, किन्तु परिच्छिन्न-आत्मा में होती है। उदाहरण के लिए एक ओर से पानी की यह एक लहर आ रही है, दूसरी ओर से दूसरी आ रही है। पहली लहर भी वैसा ही जल है जैसा कि दूसरी लहर, और परस्पर टकराने पर भी दोनों पानी ही रहेगी। उनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता फिर भी लहरों में क्रिया और प्रतिक्रिया होती है। यहाँ एक लहर में परिमित जल दूसरी लहर में परिमित जल से टक्कर लेता है, और इस टक्कर से फेन का दृश्य प्रादुर्भूत होता है। इसी तरह जब बुद्धि में परिमित निर्गुण सत्ता जब पदार्थ में परिमित निर्गुण सत्ता से टकराता है, तो इस दुनिया के गुण, धर्म और स्वभाव का दृश्य उत्पन्न हो जाता है, ठीक उस तरह जैसे यह हाथ जब दूसरे हाथ से टकराता है, तो यद्यपि एक

में भी वही शक्ति है जो दूसरे हाथ में है, तो भी वे ध्वनि पैदा करते हैं।

परमतत्व बुद्धि में वही है जो पदार्थ में है। जब बुद्धि या द्रष्टा का पदार्थ के साथ संस्पर्श होता है, तब भी उन दोनों के पीछे वही एक निर्गुण सत्ता या परमतत्व विद्यमान रहता है। यहाँ यह बात साफ समझ में न आई होगी कि दुनिया के सभी पदार्थों के पीछे वही एक परमतत्व है। यह एक कलम है। इस कलम में कुछ गुण या धर्म हैं साथ ही उसके आधार में परमतत्व। आप जान गये हैं कि इस आधारभूत परमतत्व की उपस्थिति के अनुमान का हमारे पास एक काफी अच्छा कारण है, क्योंकि ये गुण आप ही आप उस समय तक प्रकट नहीं हो सकते जबतक बुद्धि पर कोई क्रिया न हो और उस पर बुद्धि अपनी प्रतिक्रिया से गुणों का प्रादुर्भाव न करे। अच्छा, यह एक कलम है। इसमें कुछ गुण हैं जिन्हें हम "क" के नाम से पुकारेंगे, और इसके आधारभूत परमतत्व को हम "त" कहेंगे। कलम उन गुणों का पुंज है जो उसे कलम बनाते हैं। यह एक मेज़ है। मेज़ में वही गुण हैं जो उसे मेज़ बनाते हैं, मान लो उनका नाम "क म" + "त" (परम तत्व) है। यहाँ आप प्रश्न कर सकते हैं कि इस "त" को हम वही पहले वाला "त" क्यों माने लेते हैं। कहा जा सकता है कि इस कलम के गुणों के पीछे स्थित परमतत्व कोई दूसरा होगा, और मेज़ के गुणों के पीछे स्थित परमतत्व कोई दूसरा होगा और भी कहा जा सकता है कि कलम के गुणों का विस्तार होने से पहले किसी तत्व ने हमारी इन्द्रियों पर क्रिया की होगी, और मेज़ के गुणों का विस्तार होने से पहले हमारी इन्द्रियों पर क्रिया करने-

वाला कोई दूसरा परमतत्व होगा उसे हम "त" न कहेंगे। क्योंकि इस "त" को और दूसरे "त" को एक मानने का हमें कोई अधिकार नहीं। अच्छा यह एक बाजा है। हम इसके आधारभूत परमतत्व को "त" १ कहेंगे ताकि वह पहले के "त" ओं से अलग रहे। यह "त" १ उन दोनों से भिन्न हो सकता है जो मेज या कलम के पीछे स्थित थे। उसी प्रकार मनुष्य के आधारभूत परमतत्व को हमें "त" २ कहना होगा।

बस, यहाँ अपनी गलती पर ध्यान दीजिये, यही गलती अब अफ़लातूँ ने की थी। वह इन आधारभूत परमतत्वों को विभिन्न मानता था जैसा कि वे ऊपरी दृष्टि से दिखाई देते हैं और इसीलिए तुमने भी उन्हें विभिन्न मान रक्खा है। परन्तु इस तर्क में एक भूल है। इसे reductio ow absurdum की आपत्ति कहते हैं। हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि यह अनुमान गलत है। कलम के गुण और स्वभाव, उसका रंग रूप तौल, कोमलता एवं अन्य गुण, आपकी बुद्धि या मन की प्रतिक्रिया के परिणाम थे। तात्पर्य यह कि जितने गुण होते हैं, सभी आपकी बुद्धि की प्रतिक्रियाजनित हैं। क्योंकि ये स्वभाव और गुण प्रतिक्रिया के अनन्तर दृष्टि-गोचर होते हैं, और हम मान चुके हैं कि इस पेंसिल में परम तत्व इन गुणों या धर्मों के विस्तार से पहले ही विद्यमान है। इस तरह वह परम तत्व सारे गुणों, स्वभावों और धर्मों से ऊपर है। "त" १ भी "त" २ भी सारे गुणों या धर्मों से ऊपर है।

फिर इन परमतत्वों में भेदों का कारण क्या हो सकता है? तनिक गंभीरतापूर्वक विचार करो। दुनिया में जो भेद-भाव दिखाई देते हैं, वे सब गुणों के कारण से हैं। खरिया

मिट्टी के इस टुकड़े और उस पेंसिल के गुणों का विचार किये बिना क्या आप दोनों में भेद कर सकते हैं ? आप कैसे जानते हैं कि खरिया मिट्टी का यह टुकड़ा पेंसिल से भिन्न है ? केवल उनके गुणों के द्वारा। यह खरिया सफेद है। यह एक गुण है। यह भुरभुरी है। यह भी एक गुण है। भेद मात्र गुणों के कारण होते हैं। अब यदि तुम इस आधारभूत परम-तत्व "त" को उस आधरभूत "त" से भिन्न मानते हो, तुम उनमें भेदों की स्थापना करते हो, उनमें भेदों का विस्तार करते हो तो दूसरे शब्दों में, तुम इस निर्गुण परमतत्व को गुणों के अधीन कर देते हो। आप देखेंगे कि उसको भेदों के अधीन कर देने से, उन्हे एक दूसरे से भिन्न मानने से, वे सब गुणों के अधीन हो जायँगे, और यह बड़ी गलती है। इन परम तत्वों को गुणों से परे मानकर आपने तर्क आरम्भ किया था, और उन्हें फिर गुणों से युक्त मानकर आप अपना तर्क समाप्त करते हैं। यदि आप इन परमतत्वों को विभिन्न और एक दूसरे से पृथक मानेंगे, तो यह आपकी भयंकर भूल होगी। इन्हें आपने गुण स्वभाव से, परे मानकर तर्क प्रारम्भ किया था, और अब उन्हे गुण स्वभाव के क्षेत्र में लाकर आप ही अपना खण्डन करते हुए तर्क समाप्त कर रहे हैं। कैसी गलती है।

आपको यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि इस पेंसिल में आधारभूत परम तत्व खड़िया के उस टुकड़े में आधारभूत परम तत्व से भिन्न है। आपको यह कहने का कोई हक नहीं है कि मन वा द्रष्टा या बुद्धि में आधार-भूत परम तत्व उस परम तत्व से भिन्न है जो एक गऊ या बैल के आधार में है। आपको यह कहने का कोई हक नहीं कि

इस मेज की आधारभूत आत्मा उस आत्मा से भिन्न है। आत्मा एक है, वही अनन्त, निर्गुण और निर्विकार नित्य सत्ता है।

एक दृष्टान्त देने से यह और भी स्पष्ट हो जायगा। यह एक सुन्दर सफेद दीवाल है। आप सब यहाँ बैठे हो। आप में से एक सज्जन उस दीवाल पर सुन्दर रेखा चित्र—रेखा-गणित के त्रिकोण, वृत्त, अंडाकृतियाँ आदि खींच रहे हैं, दूसरे सज्जन उसी दीवाल पर किसी महासमर सम्बन्धी चित्र खींच रहे हैं, तीसरे सज्जन उसी दीवाल पर अपनी स्त्री मित्रों और सम्बन्धियों के चित्र खींच रहे हैं, इसी प्रकार उस पर लोग विभिन्न चित्र खींच रहे हैं। अब इन सब चित्रों के पीछे वही एक ही आधारभूत दीवाल है। इसी तरह जो चीजें आपको इस दुनिया में दिखाई देती हैं, उनके पीछे भी एक ही परम तत्व है। कल्पना करो कि यहाँ आप घोड़ा, गाय, एक कुत्ता, हाथी, और आदमी आदि अनेक चीजें देख रहे हैं। अब ये सारे चित्र उसी एक निर्गुण 'त' पर, दृष्टान्तवाले 'त' पर, उसी सफेद दीवाल पर बनी हुई हैं। इस प्रकार से वही आत्मा, एक ही अनन्त राम, हरएक के पीछे, सबके पीछे विद्यमान है। स्वप्न में आप एक बैल देखते हैं, फिर एक कुत्ता, फिर एक मनुष्य और फिर एक स्त्री। किन्तु आप जानते हैं कि आपके स्वप्नों में बैल, कुत्ता, आदमी, एवं अन्य चीजें एक उसी निर्गुण तत्व, सच्ची आत्मा पर चित्रित होती हैं। जागने पर आप देखते हैं कि घोड़ा, पहाड़, या नदी आदि आपके स्वप्न की किसी चीज़ का पता नहीं चलता।

जिन गुणों से दुनिया बनाई गई है, उनकी बाबत क्या सोचते हो? इन्द्रिय-गोचर जगत् गुणों का पुञ्ज है, और

सभी गुण उस परम तत्व पर निर्भर रहते हैं। यह एक बहुत ही सूक्ष्म बात है जो आप अभी नहीं समझ सकेंगे, किन्तु उसका सुनना अच्छा है बाद के व्याख्यानों में आप शायद पूरी तौर पर उसे समझ लें। ये सारे गुण उस परमतत्व पर निर्भर करते हैं। उसी धुरी पर चक्कर लगाते हैं। अतः इन गुणों के धर्म के अनुसार, उस परमतत्व में भी एक गुण हुआ अर्थात् उसमें भी वह इन गुणों के अवलम्बी, पोषक या आधार होने का गुण है। वह परमतत्व सब गुणों को आश्रय देता है। यदि यह सच है तो वह परमतत्व निर्गुण नहीं रहा क्योंकि उस परमतत्व में इन सब गुणों को आश्रय देने का कम से कम एक गुण तो है। तो फिर हम कैसे कह सकते हैं कि वह परमतत्व निर्गुण है? अनुभव से अब यह बात हम अपने निजी कहते हैं। जिस तरह आप अपने निजी अनुभव के प्रमाण पर इस दुनिया को ठोस या वास्तविक मानते हैं, ठीक उसी तरह हम अपने निजी उच्चतर अनुभव के आधार पर हम कहते हैं कि जब उस परमतत्व का साक्षात् हो जाता है, तब ये सारे गुण, देश और काल गायब हो जाते हैं। क्योंकि उस परमतत्व के दृष्टिबिन्दु से इन गुणों का अस्तित्व कभी नहीं हुआ था, किन्तु गुणों के दृष्टि-बिन्दु से ही वे उस अधिष्ठान रूप परमतत्व पर निर्भर करते हैं। यह एक बड़ी समस्या है जिसे हल करना होगा। यह माया की गुत्थी कहलाती है। वास्तव में वह परमतत्व निर्गुण है. सब गुणों से परे है, किन्तु ये गुण अपने स्थिति-बिन्दु से उस परमतत्व पर निर्भर करते हैं। यह एक प्रमुख समस्या है जिसके सुलझने पर संसार की अन्य गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं।

यह केवल कल्पना का विषय नहीं है। इन पर केवल बातचीत करने से काम नहीं चलता। यूरोपीय दार्शनिक इन समस्याओं को केवल कल्पना के विषय मानते हैं। किन्तु भारतीय तत्वज्ञानियों का यह ढंग नहीं होता। कोई तर्क-सिद्ध विषय उनके लिए तबतक अर्द्ध सिद्ध ही बना रहता है, जबतक कि वह अनुभव द्वारा प्रमाणित नहीं हो जाता, जबतक प्रयोगों द्वारा भी उसकी सिद्धि नहीं हो जाती। इस विषय की दार्शनिक व्याख्या सुनने में अति मीठी लगती है, किन्तु जब एक बार इसका अनुभव किया जाता है, तब तो यह माधुर्य और आनन्द घन होता है। यह सचमुच अनुभव करने योग्य है। यदि आप इस विचार को जीवन में उतार लो—कि तुम्हीं वही एक अनन्त "त" हो, जो इस विश्व के सभी पदार्थों के पीछे आधार रूप से विद्यमान है, तुम्हीं वह परम तत्त्व हो—तो तुम देह से परे हो जाते हो, मन से परे होते हो। यह शरीर द्रष्टा नहीं है। यह तो केवल एक पदार्थ मात्र है, जो एक ओर की लहर से दूसरी ओर की लहर के साथ टक्कर होने पर प्रकट होती है। आप केवल देहरूपी फेन नहीं हैं। आप तो परमतत्व हो, जिसमें यह सम्पूर्ण संसार, विश्व का सम्पूर्ण व्यापार, लहरें या भँवर मात्र हैं। इसको अनुभव करो, और परम स्वतन्त्र हो जाओ। क्या यह आश्चर्यों का आश्चर्य नहीं है कि आप जो वास्तविक सत्य, वास्तविक परम स्वरूप हो, इसका अनुभव नहीं करते? ओ, मुक्त हो जाओ, कैसा शुभ संवाद है, कैसा मंगलमय संदेश है कि आप ही वह परमतत्त्व हो आप ही असली "त" हो। इसे अनुभव करो और स्वतन्त्र हो जाओ।

Let that be your state.

The body dissolved is cast to winds,
While Death, Infinity me enshrine ;

All ears my ears, all eyes my eyes,
All hands my hands, all minds my minds,

I swallowed up death, all difference I drank up,
How sweet and strong and good I find.

तुम्हारी यह दशा हो,

"देह विनष्ट होने पर पवन के हवाले हो गई,
और मैं मृत्यु, अनन्तता का मन्दिर बना हुआ हूँ ;
सब कान मेरे कान, सब नेत्र मेरे नेत्र,
सब हाथ मेरे हाथ, सब मन मेरे मन।
मैंने मौत निगल ली, सब भेद मैं पी गया,
कैसा तरो ताजा, अच्छा, और बलवान मैं हो गया।"

वस्तु-सत्तावाद और कल्पनावाद वा दृष्टि-सृष्टिवाद

सोमवार, ४ अप्रैल १९०४ का भाषण

......जिन लोगों का विश्वास है कि कल्पनायें सत्य हैं, वे कहते हैं कि कल्पनावाद एक तथ्य है, और इनके पास अपना पक्ष-समर्थन के लिए काफी प्रमाण हैं। उदाहरण के लिए बोधकर्त्ता के बिना दीवाल का बोध कैसे हो सकता है? उनका कथन है कि दीवाल में कोई तथ्य नहीं है, परन्तु कल्पना से दीवाल की सृष्टि होती है। यदि कोई मनुष्य हिप्नोटिज्म (संमोहन विद्या) के द्वारा इससे इतर रूप में मोहित किया जाय तो वह उसी रूप में दीवाल को देखेगा, जिस रूप में वह मोहित किया जायगा, उसी उसी रूप में वह दीवाल को देखने लगेगा। जिस मनुष्य को मैंने सम्मोहित कर लिया है, उससे यदि मैं कहूँ कि यह धरातल झील है, तो वह तुरन्त उसमें मछलियाँ मारने लगेगा। किन्तु यहाँ पर वस्तु-सत्तावादी आक्षेप करता है और कहता है कि दीवाल तुम्हारी कल्पना से स्वतन्त्र बिलकुल असली तथ्य रूप है, तुम इसे देखते हो, तुम इसे बोध करते हो, तुम इसे सुन सकते हो, और यदि तुम्हारी सूँघने की शक्ति तीव्र हो, तो इसे सूँघ भी सकते, और यदि तुम इसे खाओ तो तुम्हारा पेट तुम्हें बतलायगा कि वह जरूर एक वास्तविक तथ्य, ठोस पदार्थ है। इस तरह तुम देख सकते हो कि अपने पक्ष में उनके पास भी प्रचुर प्रमाण हैं। किन्तु राम आपसे कहना चाहता है कि किसी भी पदार्थ को बनाने के लिए संकल्प और वस्तु दोनों की जरूरत होती है। माना कि सम्मोहित मनुष्य के लिए

दीवाल दीवाल से इतर दूसरी वस्तु बन जाती है, फिर भी उसे किसी भी प्रकार का संकेत देने के लिए वहाँ कोई न कोई वस्तु तो अवश्य होनी चाहिए, चाहे हम उसे घोड़ा या झील या किसी और वस्तु का रूप देना चाहें। हर हालत में द्रष्टा और दृश्य इन दोनों की ज़रूरत पड़ती है।

एक वार भारतवर्ष में दो मनुष्य झगड़ रहे थे। वे दरवेश कहलाते थे। एक का नाम था श्रीयुत लकड़ी और दूसरे का नाम था श्रीयुत कुल्हाड़ी। श्रीयुत कुल्हाड़ी ने कुपित होकर श्री लकड़ी से कहा "मैं तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।" श्रीयुत लकड़ी ने उत्तर दिया, "किन्तु, महाशय जी! तुम्हारे पीछे मेरा होना ज़रूरी है, अन्यथा तुम कुछ नहीं कर सकते।" आप जानते हैं कि कुल्हाड़ी का बेंट लकड़ी का होता है। और इसी तरह कल्पनावाद और वस्तु-सत्तावाद साथ-साथ चलते हैं, वे अन्योन्याश्रित हैं।

मैं वलुआ-कागज-पर दियासलाई रगड़ता हूँ, और लौ पैदा होती है। लौ न तो दियासलाई में थी और न वलुआ-कागज में। किन्तु दोनों के संघर्ष से लौ पैदा हुई। मैं अपने हाथ पीटता हूँ, उससे एक आवाज़ पैदा होती है। आवाज़ न तो दाहिने हाथ में है और न वांये हाथ में, किन्तु दोनों के टकराने का परिणाम है। आत्मा दोनों हाथों में वही एक है। यहाँ मैं तुमसे कौवे की बात कहना चाहता हूँ। कहते हैं कौवे के नेत्र-कूप तो दो होते हैं, किन्तु आँख का तारा एक ही होता है, जब उसे दाहिनी ओर देखना होता है तब वह उधर के कूप में पुतली ले जाता है; और जब बांई ओर देखना होता है, तब उधर के कटोरे में पुतली ले जाता है। अब पुतली तो एक है, परन्तु वही विभिन्न स्थानों में घुमाई जाती

है। दो बड़ी लहरों के परस्पर संपर्क से सफेद फेन प्रकट होता है दाहिनी लहर में और बाईं लहर में जल वही एक है, परन्तु जब वे मिलती हैं तब सफेद शिखा हमें दृष्टिगोचर होती है। बच्चा अकेले माता या अकेले पिता से पैदा नहीं होता, माता और पिता दोनों से पैदा होता है।

अब हम आत्म-निष्ठ को द्रष्टा और पदार्थ-निष्ठ को दृश्य कहेंगे। हम सर्वत्र देखते आये हैं कि यही दो परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। और यही दो जब संपर्क में आते हैं तो नाम-रूपात्मक जगत् की सृष्टि करते हैं जो हमें दिखाई देता है। उन दोनों में से कोई अकेला गोचर-जगत् की उत्पत्ति नहीं करता। इस प्रकार यह बात साफ हो जाती है कि गोचर-जगत् की व्याख्या के लिए संकल्पवाद और वस्तु-सत्तावाद दोनों को एकत्र होना पड़ता है, क्योंकि संभवतः कोई भी इसे अकेला सम्पन्न नहीं कर सकता।

भारतवर्ष में कुछ घरों में बहुत से दर्पण होते हैं, वास्तव में दीवालें और छतें दर्पणों से जड़ी रहती हैं। एक बार एक कुत्ता एक ऐसे ही घर में जा घुसा अपने चारों ओर उसे सैकड़ों कुत्ते दिखाई देने लगे। उसने ऊपर की ओर देखा, उसे अपने शिर पर कुत्ते दिखाई दिये, बस, डर के मारे उसने उछलना शुरू किया। तुरन्त ही सैकड़ों कुत्ते उछलने लगे। तब वह भूँकने और इधर-उधर दौड़ने लगा। उन कुत्तों ने भी अपने मुँह फैलाये और दौड़ने लगे। उसका यही ढंग बड़ी देर तक चलता रहा यहाँ तक कि वह थकावट के मारे गिर पड़ा और हताश हो कर शरीर ही छोड़ दिया मकान मालिक ने यह हाल देखा और कुत्ते की लोथ उठवा कर फेंकवा दी। तत्पश्चात् इसी कमरे में एक सुन्दर नद-

युवक युवराज ने प्रवेश किया, और सभी शीशों में अपनी परछाईं देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। पहले उसने अपने बालों की तारीफ की, फिर मुख और अन्य आकृतियों की प्रशंसा की, अन्त में अपनी पोशाक की, एवं अन्य बातों की सुन्दरता देखी। वह इन सैकड़ों चित्रों से बहुत खुश हुआ क्योंकि वह जानता था कि ये सैकड़ों चित्र स्वयं उसी के हैं। बस हमें केवल विश्राम मिलता है जब हम यह जान लेते हैं कि आत्मा केवल एक ही है और विभिन्न नामों से हमें जितनी शक्ल-सूरतें दिखाई देती हैं, वे सब हमारी वही वास्तविक आत्मा हैं। अन्यथा उस कुत्ते के समान दशा होती है। हमें हमेशा डर लगा रहता है कि यह हमको धोखा देगा, वह हमारी हानि करेगा, तीसरा हमसे कोई चीज़ न लेगा, और इन्हीं नाम रूपों के विरुद्ध निरन्तर एक झगड़ा चलता रहता है, क्योंकि हम उन्हें अपने से भिन्न समझते हैं। किन्तु एक बार सत्य का अनुभव होते ही हम राजकुमार की नाँई शान्त हो जाते हैं। हम जान जाते हैं कि आत्मा को कोई धोखा नहीं दे सकता; क्योंकि वह निर्विकार और परम स्वतंत्र है। जब तक हम कुत्ते की तरह इधर-उधर उछलते रहते हैं, तब तक हम केवल ऊपरी सतह पर जीवन व्यतीत करते हैं, किन्तु जब हमें आत्मा (अपने स्वरूप) का अनुभव हो जाता है, तब हम सतह के नीचे गोता लगाकर पूर्ण सत्य के साम्राज्य में पहुँच जाते हैं।

कल्पना करो कि स्वप्न में द्रष्टा पहाड़ पर चढ़ा, और वहाँ उसे एक व्याघ्र मिला, जो उसे नोच-नोच कर टुकड़े-टुकड़े करने लगा; अथवा वह ऐसे दलदलों में फँस गया, जिनसे निकलना कठिन था; या वह गङ्गाजी में डूबने लगा।

अब यदि यह द्रष्टा वास्तविक और सत्य होता तो वह अनुभव करता कि ये तो स्वप्न की बातें हैं, और उसे कुछ भी व्यथा न होती। व्याघ्र द्वारा नोचे जाने पर वह कदापि रोता और चिल्लाता नहीं और न दलदल की गहराई को देखकर डरता ही। किन्तु हम जानते हैं कि वह कल्पना मात्र था, असलियत नहीं थी। अच्छा, अब स्वप्न की वस्तुओं को सत्य मान लो। यदि सचमुच ऐसा होता; तो द्रष्टा के सोने के बिछौने पर पानी की बाढ़ आ गई होती, सिंह वस्तुतः द्रष्टा को नष्ट कर देता, इत्यादि। किन्तु हम जानते हैं कि ऐसा कभी होता नहीं, स्वप्न-दृश्य कभी सत्य नहीं होता। द्रष्टा और दृश्य दोनों मिलकर स्वप्न की रचना करते हैं, किन्तु उनमें से सत्य और तथ्य एक भी नहीं हैं।

मेज़	=	"क म"	+	"त"
तख्ता	=	"क च"	+	"त"
गुलाब	=	"क ग"	+	"त"

मेज़ के गुण और आधारभूत अज्ञात = मेज़।

तख्ते के गुण और आधारभूत अव्यक्त = तख्ता गुलाब के गुण और आधारभूत अव्यक्त = गुलाब।

गुलाब का रंग लाल है, उसमें पँखड़ियाँ आदि गुण हैं, इन गुणों और आधारभूत अव्यक्त या अज्ञात के योग से गुलाब दिखाई देता है। अब यह अव्यक्त या अज्ञात सब पदार्थों में वही एक है, और वही उनकी आत्मा है, जो उनकी सच्ची वास्तविकता है।

यहाँ दो समद्विभुज त्रिभुज और एक आयत क्षेत्र है—
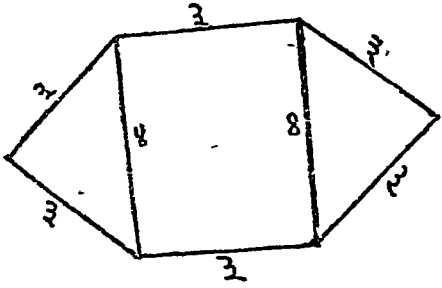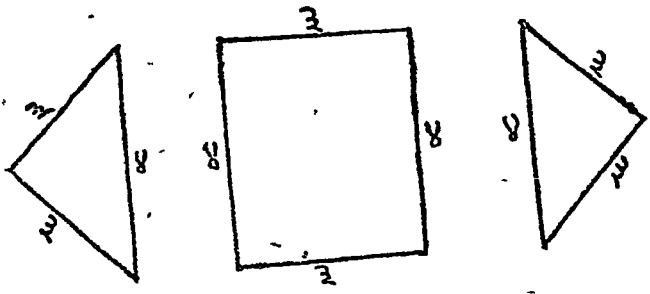
और इन आकारों को एक में मिला देने से एक षट्भुज क्षेत्र बन जाता है, जो उन आकारों से भिन्न होता है, जिनको हमने मिलाया था। इन समद्विभुज त्रिभुजों और आयत में किसी की भुजायें बराबर नहीं थीं किन्तु षट्भुज क्षेत्र की सब भुजायें बराबर हैं। समद्विभुज त्रिभुज में हम न्यून कोणों को बढ़ा सकते थे किन्तु षट्भुज क्षेत्र में ऐसा नहीं कर सकते। यहाँ हमने जिन आकारों को मिलाया है, नया आकार हर बात में उनसे पृथक है।

इसी तरह विज्ञान के फारमूला 'एच २ ओ' पर विचार करें। पानी में दो अंश हाइड्रोजन गैस के और एक अंश

ऑक्सीजन गैस का होता है। अब "आक्सीजन" और "हाइड्रोजन" की साँस लेना सहज है, वे हवा में होते ही हैं परन्तु जब दोनों उक्त परिमाण में मिलकर पानी पैदा करते हैं, तब उनसे साँस कैसे ली जा सकती है. वह बिलकुल भिन्न वस्तु हो गई। "हाइड्रोजन" और "आक्सीजन" अलग अलग जल उठनेवाले द्रव्य हैं, किन्तु जल के सम्बन्ध में यह बात असंगत है।

इन उदाहरणों से व्यक्त जगत्, नामरूपात्मक संसार की व्याख्या होती है, और यह भी सिद्ध होता है कि न तो द्रष्टा ही सत्य है और न दृश्य।

वेदान्त कहता है कि यह सब शब्दों का खेल मात्र है। शब्दों पर झगड़ने से क्या लाभ? वास्तव में एक ही आत्मा है, जो हम हैं, उसके सिवाय कुछ नहीं है, और चूँकि आत्मा से इतर कुछ नहीं है, इसलिए तुम युक्तिपूर्वक नहीं कह सकते कि तुम एक अंश हो। वरन् इससे यह अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है कि तुम पूर्ण आत्मा-सम्पूर्ण आत्मा हो। सत्य के खण्ड नहीं होते। और इसी लिए तुम वह सत्य हो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

—:0:0:0:—

वेदान्त विषयक कुछ प्रश्नों के उत्तर

अकेडेमी आफ साइंसेज में २३ दिसम्बर १९०२ को दिया हुआ व्याख्यान।

आज किसी विशेष विषय पर कोई नियमित व्याख्यान न होगा। तरह तरह के प्रश्न लेकर बहुत से लोग राम के पास आते रहते हैं। कभी-कभी तो ये प्रश्न बड़े विलक्षण होते हैं। उन्हीं में से कुछ प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर आज दिया जायगा। आपमें से किसी को अथवा अमेरिका के किसी भाग के निवासी किसी व्यक्ति को इस विषय पर प्रश्न करना हो, तो कागज के टुकड़े पर अपना प्रश्न लिखकर राम के पास भेज सकता है। इस सभा भवन में अथवा किसी दूसरे स्थान में जहाँ राम को भाषण करने का अवसर मिलेगा, उस व्यक्ति के प्रश्न का उत्तर विस्तारपूर्वक दिया जायगा।

इन प्रश्नों को आरम्भ करने के पहले, उन सभी प्रकार के प्रश्नों के सम्बन्ध में एक सामान्य वक्तव्य देना आवश्यक है, जो लोगों के मन में उठते-रहते हैं। आप जानते होंगे कि भारतीय तत्वज्ञानियों का ढंग यूरोपीय अथवा अमेरिकन तत्वज्ञानियों के ढंग से एकदम भिन्न है। भारतीय तत्वज्ञानी जब किसी विषय को उठाते हैं, तो पहले उसकी व्याख्या करते हैं, फिर उस विषय के सम्बन्ध में उठने वाली सभी संभव शंकाओं और प्रश्नों का समाधान करते हैं। राम को स्वयं इन सब अवस्थाओं में होकर गुजरना पड़ा है। राम के सामने भी वे सभी सवाल थे जो किसी के सामने हो

सकते हैं, ऐसे प्रश्नों और शंकाओं का मानो एक सागर होता है। उनमें से कुछ तो राम के वे प्रश्न हैं जब राम ५ पाँच साल का था। कुछ प्रश्न ऐसे हैं जो राम को १५ पन्द्रह वर्ष की आयु में हैरान करते थे। कुछ ऐसे हैं जिन्होंने २५ वर्ष की आयु में राम का ध्यान आकर्षित किया।

इन प्रश्नों के सम्बन्ध में एक बात और बतलाना है। इन प्रश्नों में से कुछ का संबंध तो दार्शनिक प्रवृत्ति के विकास की अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्थाओं से है। कुछ का सम्बन्ध धार्मिक विकास की माध्यमिक अवस्था से है। शेष का सम्बन्ध दूसरी अवस्थाओं से है। यहाँ एक ऐसा मनुष्य आता है जो तुम से रेखागणित की प्रथम पुस्तक की ४७ वीं प्रमेय समझना चाहता है। अब जो मनुष्य ४६ वीं, ४५ वीं, यहाँ तक कि पहली प्रमेय भी नहीं समझा है, और रेखागणित के सूत्रों एवं स्वयंसिद्ध बातों से भी अपरिचित है, उसको यदि आप तुरन्त ४७ वीं प्रमेय समझाना शुरू कर दें तो उसे पूर्णतः सन्तुष्ट कर सकना कैसे आपके लिए संभव है? यदि आप यह काम अपने हाथ में लेकर समझाना शुरू करेंगे, तो आरम्भ में ही आपको ४६ वीं प्रमेय का प्रयोग करना होगा, फिर समचतुष्कोण क्षेत्र की व्याख्या करना पड़ेगी, जिसे वह नहीं जानता, फिर ३२ वीं प्रमेय का प्रयोग करना पड़ेगा, जो वह नहीं जानता। ३२ वीं प्रमेय को सिद्ध करने के लिए आपको १६ वीं, २२ वीं प्रमेयों आदि की सहायता लेनी पड़ेगी। इस प्रकार अन्त में तुम्हें पहली प्रमेय पर आना होगा। इतनी ही नहीं, तुम्हें स्वयंसिद्ध सूत्रों को भी समझाना पड़ेगा। हरेक बात गड़बड़ में पड़ जायगी और कुछ भी सिद्ध नहीं होगा।

ऐसी अस्त-व्यस्त दशा में किसी विज्ञान का अध्ययन नहीं करना चाहिए। विज्ञान का अध्ययन तो नियमबद्ध, युक्तिपूर्ण ढंग से ही करना उचित है। यह वेदान्त-दर्शन, यह वेदान्त-धर्म धर्म भी है और विज्ञान भी। यूरोप में विज्ञान और धर्म में विरोध है, किन्तु यह शिक्षा, जो राम आपको दे रहा है, उन दोनों का समन्वय है। वास्तव में यह विद्या तत्वज्ञान, विज्ञान, और धर्म—इन सबका समन्वय कर देती है।

यह विज्ञानों का विज्ञान है, इसलिए इस पर क्रमपूर्वक, विधि और नियमपूर्वक विचार करना चाहिए। जिन थोड़े से व्याख्यानों को आप लोगों ने सुना है, वे इस तत्वज्ञान के भीतर प्रवेश तक नहीं करते। शुद्ध वेदान्त-दर्शन पर एक भी व्याख्यान अभी तक नहीं दिया गया है। केवल आस-पास के प्रश्नों पर विचार किया गया है। केवल व्याख्यानों में प्रारम्भिक या प्रस्तावनात्मक बातें बतलाई गई हैं। यदि राम को इस अद्भुत विज्ञान और धर्म की स्पष्ट व्याख्या आपके सामने करने का अवसर मिला तो आपके सब संदेह, सारे प्रश्न, आपही आप हल हो जायेंगे।

कुछ लोग बहुत ही अधीर होते हैं, वे अपने प्रश्नों का उत्तर चाहते हैं। बहुत अच्छा! हम आज उनमें से कुछ प्रश्नों को लेंगे। प्रश्न बड़े ही विचित्र हैं।

कल या परसों की रात एक मनुष्य ने आकर राम से यह प्रश्न किया, "महाशय! आप यह क्या सिखाते हैं"? "क्या आपके आत्मा है?" "क्या आप आत्मा के अस्तित्व की शिक्षा देते हैं?" "क्या आप आत्मा में विश्वास करते हैं" राम ने कहा, "नहीं, मेरे पास आत्मा नहीं है।" वह भौंचक्का रह गया।

"अरे, तब तो यह शैतानी धर्म है। उसके आत्मा ही नहीं है।" राम के इस उत्तर का "मेरे आत्मा नहीं है" क्या मतलब है? अमेरिका और यूरोप में धर्म से क्या अभिप्राय है? यहाँ धर्म बैठकों को सजाने की एक वस्तु मात्र है। यह मेरी स्त्री है, यह मेरे बच्चे, अत्युत्तम भव्य भवन, यह मेरी सम्पति और बैंक में इतने रुपये हैं। यह सब तो मेरे पास हैं, पर फिर भी मुझे कुछ और चाहिए। संचय-वृत्ति के इस भाव से प्रेरित होकर, बटोरने, जमा करने और ग्रहण करने की इच्छा के फेर में पड़कर वह एक वस्तु और संचय करना, ग्रहण करना और बटोरना चाहता है। जैसे सम्बन्धियों के चित्रों के बिना कमरे की सजावट सुन्दर नहीं हो सकती, वैसे ही बिना थोड़े से धर्म के मुझे पूरा संतोष नहीं होता कि मैं पूरा धनाढ्य हूँ। अन्य चीजों के साथ मेरे पास कुछ धर्म भी होना चाहिए, किन्तु पहले और चीजें प्राप्त हो लें और धर्म सबके बाद में आ सकता है।

आप राम को क्षमा करेंगे, यदि उसके मुख से कुछ ऐसे शब्द निकल रहे हैं, जो कुछ लोगों को रुचिकर न हों। राम व्यक्तियों से अधिक सत्य का आदर करता है, और सत्य का आदर करके ही वह आपका वास्तविक आदर करता है, क्योंकि उसके मतानुसार आप सत्य स्वरूप हो, न कि यह मिथ्या आत्मा या शरीर। सत्य ही ऐसा कहने के लिए राम को विवश करता है। इस देश की साधारण प्रार्थनाओं में, ईश्वर का क्या उपयोग किया जाता है? लोग ईश्वर के सामने किस रूप में जाते हैं? जब बच्चा बीमार पड़ता है, अथवा सम्पति को हानि पहुँचने की संभावना होती है, जब शरीर को पीड़ा होती है, तब वे ईश्वर की शरण में पहुँचते,

आँखें मीचते और हाथ ऊपर उठा कर कहते हैं—'ऐ ईश्वर, तुम्हारा निवास स्वर्ग में है, ऐ ईश्वर, तुम आकाश में हो, ऐसे लोगों को ईश्वर पर दया भी नहीं आती कि बादलों में रहने से कहीं उसे सर्दी न लग जाय—"हे ईश्वर! ऐ आकाश-वासी ईश्वर, तू मुझ पर दया कर मेरी सम्पत्ति की रक्षा कर, मेरा शरीर चंगा कर दे, मेरे बच्चे को स्वस्थ कर दे।' क्या यह धर्म है? यहाँ ईश्वर पर केवल इसी अभिप्राय से विश्वास किया जाता है कि जब कभी घर में कोई दिक्कत हो, जब घर कुछ गन्दा हो जाय अथवा टूट-फूट जाय, तब वह बेचारा ईश्वर आकाश से उतरकर आपके घर की बुहारी दे, उसे साफ-सुथरा रखे। क्या ईश्वर का ऐसा उपयोग नहीं किया जाता? क्या यहाँ धर्म केवल तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति के लिए नहीं माना जाता? क्या यही धर्म है? यहाँ मुख्य वस्तु है शरीर, क्षुद्र आत्मा, स्त्री और बच्चे। ईश्वर तो केवल कमरों को साफ-सुथरा करने के निमित्त स्वर्ग से बुलाया जाता है। क्या यह सच्ची बात नहीं है?

सम्पूर्ण भारत में तो नहीं किन्तु कम से कम उन लोगों के लिए, जो धार्मिक वृत्ति के हैं, उनके विषय में मैं कहता हूँ कि इन शिक्षाओं के आधार पर, वेदान्त की शिक्षा के आधार पर—धर्म का यह अर्थ नहीं होता। भारतवर्ष में ईसा की यह शिक्षा-"वैकुण्ठ के साम्राज्य को ढूँढ़ो और अन्य सभी वस्तुयें तुम्हें मिल जायँगी"—जिसे लोग बहुत ही कम सुनते हैं, यह शिक्षा अत्यन्त आग्रहपूर्वक बड़ी ताकीद से सिखाई जाती है। इसका अर्थ है, शरीर, मन, सम्बन्ध, सम्पत्ति, संसार, सब कुछ प्यारे के चरणों में समर्पित कर दो। तब सारा संसार घर बन जाता है, और भलाई करना धर्म।

इस भाँति परम आवश्यक वस्तु, एक मात्र आवश्यक वस्तु (ईश्वर-प्राप्ति) ही हमारा एक मात्र ध्येय होता है। अन्य वस्तुएँ उसी की सहायक या परदेश की चीजें मानी जाती हैं। वहाँ परमेश्वर ही असली घर माना जाता है। ये बाहरी घर तो केवल सरायों या होटलों के तुल्य हैं। इन लोगों को भी अपनी स्त्रियों और बाल-बच्चों की जरूरतों की ओर ध्यान देना पड़ता है। किन्तु वे जीवन में उनका यथोचित स्थान जानते हैं। "तुम्हारे आत्मा है?" इस प्रश्न पर विचार कीजिये। यह एक अप्रासंगिक प्रश्न है। मेरा एक शरीर है। अब पूछा जाता है, क्या मेरे एक आत्मा भी है?" राम कहता है "मैं आत्मा हूँ। मैं स्वयं आत्मा हूँ।" "तुम्हारे पास आत्मा है? यह कहना कितना निरर्थक है, मानों मैं शरीर हूँ, और आत्मा मेरी सम्पत्ति है। मैं आत्मा हूँ। मेरा एक शरीर है, और सारी दुनिया मेरी है।

एक दूसरे मनुष्य ने राम से यह प्रश्न किया था--तुम ईश्वर में विश्वास करते हो? राम कहता है--मैं ईश्वर को जानता हूँ। विश्वास हम उस वस्तु में करते हैं जिसे हम नहीं जानते होते और जो हम पर बलात् लादी जाती है जिसे हम स्वयं नहीं जानते। ईश्वर में विश्वास करने का अर्थ क्या है? आप उसके बारे में क्या जानते हैं--ऐसे प्रश्नों का क्या अर्थ हो सकता है? "मैं परमेश्वर को जानता हूँ। मैं परमेश्वर हूँ, मैं वही हूँ। फिर वह पूछता है, "ईश्वर तुम्हारे अन्दर है।" राम कहता है, देह और दुनिया ईश्वर के भीतर है और वही ईश्वर मैं हूँ। बस, यही राम और उनके दृष्टि-कोण में मौलिक अन्तर है। यहाँ जब कोई मनुष्य मर जाता है, तो लोग कहते हैं, उसने प्रेत त्याग दिया। भारतवासी कहते

हैं, उसने शरीर त्याग दिया। दो विभिन्न दृष्टिविन्दुओं में अन्तर है। यह अच्छा दृष्टान्त है। उसने प्रेत त्याग दिया; मानों उसका वास्तविक आत्मा शरीर था, और आत्मा उस पर ऊपर से टंकी हुई वस्तु थी; मानों उसका आत्मा शरीर था, और आत्मा या प्रेत कोई परदेशी चीज़ थी। हिन्दुस्तानी कहते हैं, मैं आत्मा हूँ, और मैं देह छोड़ता हूँ। जैसे मैं कपड़े बदलता हूँ, ठीक वैसे ही शरीर छोड़ देता हूँ।

एक दूसरा प्रश्न है। "यदि ईश्वर ही सब कुछ है, उसके सिवा कुछ और नहीं, तो संसार में इतना संकट और इतना क्लेश क्यों है?" आप जानते हैं कि वेदान्त की दृष्टि में परमेश्वर ही सब कुछ है, परमेश्वर ही सबमें सब कुछ है, तुम परमेश्वर हो, मैं परमेश्वर हूँ। लोग पूछते हैं क्या तुम ईश्वर के कोई अंश हो? नहीं, नहीं, परमेश्वर के खण्ड नहीं किये जा सकते, परमेश्वर के चीर-चीर कर टुकड़े किये जा सकते। यदि ईश्वर अनन्त है, यदि वह स्वयं अनन्तता है तो तुम परमेश्वर के कोई अंश नहीं हो सकते। तुम तो पूर्ण परमेश्वर हो, न कि परमेश्वर का अंश मात्र।

अब प्रश्न उठता है, यदि ईश्वर सबमें सब कुछ है, तो एक शरीर में वह अपने को क्लेश और कष्ट की दशा में और दूसरे शरीर में गरीबी की दशा में क्यों डालता है? वह भारतवर्ष में महामारी और गरीबी, और अमेरिका में राजनैतिक स्वाधीनता क्यों फैलाता है? परमेश्वर एक मनुष्य को लाखों करोड़ों रुपये का स्वामी और दूसरे को गरीब, भुखमरा, अधपेट रहनेवाला क्यों बनाता है? वह ऐसा क्यों करता है? वह कैसा अन्यायी है? ऐसे प्रश्नकर्ता के समाधान के लिए इस देश में भी और

भारतवर्ष में भी प्रयत्न किये जाते हैं, और अधिकांश मनुष्य कर्मवाद के सिद्धान्त का आश्रय लेते हैं कर्म का सिद्धान्त कार्य-कारण का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का अर्थ है कि मनुष्य आपही अपने भाग्य का विधाता है, प्रत्येक मनुष्य अपनी परिस्थिति और वातावरण की सृष्टि अपनी ही मर्ज़ी से करता है, और इस भाँति ईश्वर सदा न्यायी बना रहता है। लोग स्वयं अपना भाग्य बनाते हैं, अपने प्रारब्ध की सृष्टि आप ही करते हैं। कर्मवाद के सिद्धान्त में प्रवेश करने की ज़रूरत राम को नहीं है। कारण और कार्य का सिद्धान्त भारत से निकला है, और वेदान्त इसे स्वीकार करता है। किन्तु इसका सम्बन्ध केवल व्यावहारिक जगत् से है, इसका सम्बन्ध केवल दृश्य संसार से है। यह वाद प्रश्न की जड़ तक नहीं जाता। कर्मवाद के सिद्धान्तानुसार, जिससे आवागमन के मन्तव्य की व्याख्या होती है, तुम्हारी वर्तमान दशा, वर्तमान परिस्थिति, तुम्हारी भूतकालीन आकांक्षाओं और कर्मों का फल है। इस प्रकार जिस परिस्थिति, जिस वातावरण में तुम हो, जैसा कुछ तुम्हारा भाग्य या प्रारब्ध है, उस सबकी रचना तुम्हारी ही भूतकालीन वासनाओं, इच्छाओं एवं कर्मों के द्वारा हुई है। यदि तुम इस उत्तर की परीक्षा करोगे तो तुम्हें ज्ञात होगा कि यह केवल कठिनाई टाल देता है। उससे प्रश्न का पूरा उत्तर नहीं मिलता। राम इस कर्मवाद का खंडन या विरोध नहीं करेगा। राम इसे पसन्द करता और इसका अनुमोदन करता है। किन्तु वह प्रश्न का दूसरा रुख, दूसरा पहलू सामने लाना चाहता है, जिसकी लोग अमेरिका में नितान्त अवहेला करते हैं, अथवा पूर्ण अवहेला नहीं करते तो उसे पीछे की ओर अवश्य रखते हैं।

कर्म के सिद्धान्त के अनुसार पिछले कर्मों ने तुम्हारी वर्तमान अवस्थाओं में भेद पैदा किया है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि तुम्हारे पूर्व जन्मों में भी, तुम्हारे कर्मों, आकांक्षाओं और प्रवृत्तियों में अन्तर था। कुछ ऐसे होंगे जो बीमार थे, कुछ धनहीन और कुछ धनी थे। प्रश्न होता है तुम्हारे उस पूर्व जीवन में ऐसे अन्तरों का क्या कारण था? उत्तर यह हो सकता है कि तुम्हारे पूर्व जीवन की अवस्थाओं में भेद उससे भी पूर्ववर्ती जीवन के वैसे ही अन्तरों के कारण होगा। अच्छा, अब इस जीवन से पूर्व पिछले तीसरे जीवन में भेदों का कारण क्या था? उसका कारण होगा, उस जीवन से भी पूर्ववर्ती एक और पहले के जीवन के भेद थे। यह सिद्धान्त तुम्हारी कठिनाई को कई लाख गुना अधिक पेचीदा बना देता है, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार, हम देखते हैं कि तुम्हारे पिछले जीवनों में, तुम्हारे पिछले जन्मों में चाहे हम इस कड़ी को अनादिकाल तक पीछे अथवा सृष्टि के आदि तक, यदि ऐसा कोई आदि हो, ले जायँ, फिर भी वहाँ हमें परस्पर भेद मिलेंगे। इस क्रम में सर्वत्र विभिन्नता और विरोध विद्यमान रहता है। अतः प्रश्न का यह कोई ठीक उत्तर न हुआ, प्रश्न केवल अधिक पेचीदा हो जाता है। प्रश्न और भी अधिक प्रबलता से हमारे सामने इस रूप में आता है। क्योंकि परमेश्वर ने अनादि काल से ऐसे भेद कायम रक्खे? यह कैसी बात है कि परमेश्वर अनादि काल से एक स्थान में किसी को धनी और दूसरे स्थान में किसी को निर्धन बनाता आया है? उसने एक स्थान में क्यों किसी को रोगी और दूसरे स्थान में क्यों किसी को स्वस्थ

बनाया? यह तो बड़ी बात है! यह भेद कैसे न्याय-संगत माना जा सकता है? वेदान्त कहता है यह प्रश्न मुझे तुमसे करना चाहिए, न कि तुम्हें वेदान्त से। यह वह प्रश्न है जिसका उत्तर तुम्हें देना चाहिए। इसे हल करने का उत्तर-दायित्व वेदान्त पर नहीं है। वह एकता में, अभिन्नता में विश्वास करता है, और साथ ही इस व्यावहारिक अनैक्य का भी समाधान करता है।

उदाहरण के लिए मानो एक अत्याचारी है, और उसके सामने ५ विभिन्न मनुष्य हैं, उससे सर्वथा पृथक्। अब यदि वह मनुष्य ईश्वर के स्थान में हो और वे लोग उसके बनाए हुए जीव, भृत्य, सेवक हों और यदि इस मनुष्य ने अपने एक गुलाम को कारागार में, और दूसरे को एक मनोरम बाग में, और तीसरे को एक भव्य महल में, और चौथे को अपने शृंगार-गृह में, और पाँचवे को हर समय एक भारी बोझ के नीचे दबा रखा तथा उसकी छाती पर विशाल हिमालय जैसा बोझ लाद दिया और उसे हर घड़ी उसी बोझ से दबाये रखा, तो आप ऐसे स्वामी को क्या कहेंगे? निर्दयी, घोर अन्यायी स्वामी! यदि परमेश्वर अपने जीवों से भिन्न हो, और एक कौम को बहुत सुखी और दूसरी को बहुत दुखी बनाता हो, और यदि वह एक मनुष्य को बहुत धनी और दूसरे को अति दीन-हीन बनावें, तो आप ऐसे प्रभु को क्या कहेंगे? निर्दयी घोर निर्दयी, अन्यायी घोर अन्यायी! यह वह प्रश्न है जिसका उत्तर उन लोगों को देना है जो परमेश्वर को मानव जाति से भिन्न मानते हैं। वेदान्त परमेश्वर को अपने से बहुत दूर नहीं मानता। ह केवल अपनी आँखें बन्द करके उसे अपने अन्दर देख सकते हैं।

कल्पना करो कि एक ऐसा स्वामी है जो कभी बाग में जाता है, और कभी महल में जाता है, कभी अँधेरे कारागार में रहता है, और कभी श्रृंगार-गृह में जाता है, वही स्वयं पाकशाला में जाता है, और स्वयं बोझे के नीचे दबा रहता है। ऐसे स्वामी को आप क्या कहेंगे? क्या वह अन्यायी है? नहीं, नहीं। अन्यायी तो वह तब होता जब वह उन लोगों से भिन्न होता जिनको वह जेलखाने में, बाग में, महल में, या वस्त्रागार में रखता है। किंतु यदि वह खुद ही श्रृंगार-गृह में जाता है, और स्वयं ही दूसरे स्थानों में जाता है, तो वह अन्यायी नहीं हो सकता। उस पर से सारा दोष हट जाता है।

इस भाँति वेदान्त बतलाता है कि यह प्रत्यक्ष अनेकता, यह ऊपरी विरोध, परमेश्वर के मुख पर एक कलंक होगा, यदि परमेश्वर उन लोगों से भिन्न हो जो कष्ट झेलते हैं और उन लोगों से भिन्न हो जो धनी और गरीब हैं। पर परमेश्वर ही स्वयं सर्व रूप है; स्वयं राम ही है, स्वयं मैं एक स्थान में धनी हूँ, मैं ही स्वयं कारागार में है, स्वयं मैं ही रूपवान हूँ, स्वयं मैं ही कुरूप हूँ, मैं ही बाग में हूँ, और मैं ही निर्जन स्थान में हूँ। फिर आप किसे दोष देंगे? स्वयं दोष लगाने वाला भी मैं हूँ। इस सम्बन्ध में एक बात और कहनी है।

इस देश में वेदान्त का प्रचार करना बड़ा ही कठिन है, जहाँ "मैं" शब्द का व्यवहार शरीर या मन के पक्ष में किया जाता है। इस देश में लोगों को ऐसा कहने की आदत है कि मेरे आत्मा है और इस "मैं" में उन्हें शरीर, मन, बुद्धि, अन्तःकरण या जीव का बोध होता है। परन्तु जिसे वेदान्त का साक्षात् हो गया है, वह इस "मैं" शब्द से देह, मन

अथवा पुनर्जन्म लेने वाले सूक्ष्म शरीर का अर्थ कदापि नहीं ले सकता। 'मैं' यह कुछ नहीं हूँ। मैं यदि हूँ तो परमेश्वर हूँ।

मैं बादशाह हूँ, मैं घोड़े का स्वामी हूँ, मैं सन्यासी हूँ, मैं एक अमेरिकावासी हूँ, मैं एक हिन्दू हूँ—ये कथन एक विशेष प्रकार के हैं और "मैं परमेश्वर हूँ" इस कथन से उनकी कोई समता नहीं है। आप इस भेद पर ध्यान दें। "मैं एक बादशाह हूँ" इस कथन में "बादशाह" शब्द मेरी एक उपाधि है। "मैं घोड़े का मालिक हूँ" इस कथन में "घोड़े का स्वामित्व" एक ऐसी पदवी है जिसे मैं पोशाक के रूप में ऊपर से पहन लेता हूँ। जब हम कहते हैं "मैं गरीब हूँ", तब गरीबी एक वस्तु है और 'मैं' कोई दूसरी वस्तु है। गरीबी मानों एक पोशाक है जो ऊपर से धारण कर ली जाती है। किन्तु जब हिन्दू कहता है, "मैं ब्रह्म हूँ"; तब सावधान! ब्रह्म या परमेश्वर शब्द कोई उपाधि नहीं है, कोई गुण नहीं है, कोई पोशाक नहीं है जो तुम अपने आपको वही तुच्छ 'मिथ्या अहं' अहंकार समझते हुए अपने ऊपर धारण कर लेते हो, ब्रह्मत्व या परमेश्वरत्व कपड़े की भाँति नहीं पहना जाता। भारतवासी जब कहता है "मैं ब्रह्म हूँ" तब उसका पदवी जैसा प्रयोजन नहीं होता। यह वक्तव्य ऐसा है जैसा कि यह साँप एक रस्सी है। यह एक मनुष्य है जिसने अन्धकार में रस्सी को साँप समझने की गलती की थी। वहाँ जमीन पर लिपटी हुई एक रस्सी पड़ी थी। इसने उसे साँप समझ लिया और डर कर गिर पड़ा। एक दूसरा व्यक्ति आकर उसे बतलाता है—ए प्यारे भाई! तुम्हारा सर्प तो रस्सी है!" इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि जिसे तुमने भ्रान्ति से साँप समझा था वह साँप नहीं है, रस्सी है। यह कथन उस तरह

का नहीं है जैसा कि मैं सम्राट हूँ। यहाँ रस्सी शब्द कोई गुण नहीं है। यदि तुमने यह कहा होता कि "यह साँप काला है" तो "काला" शब्द 'सर्प' शब्द का गुण होता है। किन्तु जब तुम कहते हो कि साँप रस्सी है, तब रस्सी साँप का गुण नहीं है। कृपया इस पर खूब ध्यान दीजिये। इसे हृदयंगम करना तनिक कठिन जान पड़ता है, किन्तु एक बार इसे समझ लेने पर तुम्हें शंकायें उठाने का कोई अवसर न रह जायगा। इसे ठीक समझिये। "साँप काला है" यह एक प्रकार का कथन है और "साँप रस्सी है" बिलकुल दूसरी तरह का कथन है।

इसी प्रकार "मैं दयालु हूँ", "मैं देवदूत हूँ" एक प्रकार का कथन है, और जब हिन्दू कहता है "मैं परमेश्वर हूँ", तो यह दूसरी तरह का कथन है। जब वह कहता है—"मैं" परमेश्वर हूँ, तो उसका अभिप्राय यह है कि मैं देह नहीं हूँ, जो तुम मुझे समझते हो, मैं वह नहीं हूँ। तुम मुझे भ्रम से मांस और रक्त, हड्डियाँ और नसें समझते हो, किन्तु बात ऐसी नहीं है। मैं हड्डियाँ नहीं हूँ, मैं नसें नहीं हूँ, और न यह साढ़े तीन हाथ का पिंजड़ा हूँ, मैं न मन हूँ, और न बुद्धि। मैं तो आदि स्रोत हूँ, मैं असली शक्ति हूँ, मैं तो स्वयं सतत् हूँ, ब्रह्म हूँ, सच्ची शक्ति हूँ। वही, केवल वही मैं हूँ, उसके सिवा कुछ नहीं।

एक बात और; लोग परमेश्वर को अपने न्यायालय के सामने लाकर पूछना चाहते हैं—'हे परमेश्वर! तू ने ऐसा कार्य क्यों किया, वह मानो उनकी तरह साधारण मनुष्य है जिसे वे साधारण मनुष्य की तरह अपने सामने बुला कर डाँट सकते हैं।

इन सारे सन्देहों और शंकाओं का उद्गम एक कहानी के दृष्टान्त से व्यक्त किया जा सकता है।

भारतवर्ष में एक तेली था। उसके घर में एक अति सुन्दर तोता पला था। एक दिन वह तेली अपनी दुकान से बाहर गया हुआ था। उसका नौकर भी किसी दूसरे काम से चला गया था। केवल तोता दुकान पर था। तेली की अनुपस्थिति में एक बड़ी बिल्ली वहाँ आई। बिल्ली को देख कर तोता डर गया। वह पिंजड़े में था, परन्तु फिर भी वह डर के मारे उछलने लगा। तोते ने अपने पँख फड़फड़ाये, और इधर उधर उछलता रहा, अन्त यह हुआ कि पिंजड़ा, जो दीवाल से टँगा हुआ था, एक बड़े कीमती तेल के मटके पर गिर पड़ा। तेल का मटका टूट गया और तेल बह निकला। कुछ देर के बाद तेली आ गया। अपने मूल्यवान तेल को बहते देख, क्रोध के मारे वह आपे से बाहर हो गया। वह तोते पर खीझ उठा। उसने सोचा कि ज़रूर तोते ने कोई शरारत की है। वह गुस्से से लाल-पीला हो गया। उसका क्रोध शान्त न होता था, क्योंकि तोते ने पिंजड़े को मटके पर गिराकर उसकी प्रायः १००) रु० की हानि कर दी थी। उसने पिंजड़े का दरवाज़ा खोला और तोते के सिर की कलँगी नोच डाली। तोता गंजा हो गया। उसके सिर पर चोटी न रह गई। तोता दो सप्ताह तक चुप रहा, उसने मालिक को रिझाना छोड़ दिया। मालिक अपनी करनी पर बहुत दुखी था। दो सप्ताह के बाद एक ग्राहक तेली की दुकान पर आया। वह ग्राहक उस समय नंगे सिर था, भाग्य से वह गंजा भी था। उसे देखते ही तोता जी खोलकर हँसा। अपना एक साथी देखकर वह बहुत प्रसन्न

हुआ। तब मालिक ने तोते से उस असाधारण उल्लास का कारण पूछा; तू क्यों आनन्द से फूला नहीं समाता? उसने कहा—मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ कि मैं अकेला ही तेली का नौकर नहीं हूँ। यह मनुष्य भी किसी तेली का नौकर होगा, नहीं तो उसके सिर के बाल कैसे चले जाते, यदि वह किसी तेली का नौकर न होता, तो गंजा कैसे होता?

ठीक इसी तरह के तर्कों का प्रयोग कुछ लोग करते हैं। वे सोचते हैं कि जब हम अपने सारे काम, सारे कर्त्तव्य, हर एक बात किसी न किसी उद्देश्य से अवश्य करते हैं, हमारे हर एक काम में कोई न कोई स्वार्थपूर्ण इच्छा या पूर्व निश्चय रहता ही है तब ईश्वर ने जो इस संसार की सृष्टि की है सो उसने यह काम किसी न किसी प्रयोजन से, किसी न किसी इच्छा से, किसी न किसी पूर्व निश्चय से ही किया होगा। तर्कपूर्ण विचार करने की यह विधि उल्टी है। इस प्रकार हम परमेश्वर को परिमित बना देते हैं। वाह, तुम उसे इधर अनन्त कहते हो और फिर उधर उसे साधारण मनुष्यों की कोटि में खींच लाना चाहते हो। यह ठीक नहीं है!

यही प्रश्न कि ईश्वर ने यह विभिन्नता क्यों पैदा की? एक दूसरे मनुष्य ने दूसरी भाषा में राम से यही पूछा था। "यदि मैं ही सब कुछ हूँ, तो फिर मैं कष्ट क्यों भोगता हूँ?" राम तुमसे केवल इतना पूछता है, "क्या तुम अपने स्वप्नों में अपने आस-पास की हरेक वस्तु नहीं होते?" तुम्हीं हरेक चीज़ होते हो। तुम्हारे स्वप्नों में, पहाड़, नदी, जंगल, और रेगिस्तान, जो दिखाई देते हैं, सब तुम्हारी ही करामात हैं, तुम्हारी ही कारीगरी हैं, तुम्हारी ही दस्तकारी हैं, फिर भी

स्वप्नों में जब एक बाघ आता है और तुम्हें खाने दौड़ता है, एक साँप आता है, तुम्हें डसने लगता है, तो तुम उससे डर जाते हो। क्या ऐसा नहीं होता? यद्यपि तुम्हीं सिंह हो, तुम्हीं चीता हो, और तुम्हीं सर्प होते हो।

राम से एक दूसरा प्रश्न पूछा गया था—यदि मैं ईश्वर हूँ, तो मैं हर एक चीज़ को क्यों नहीं जानता। यह तो तुम जानते ही हो कि राम यह उपदेश देता है कि तुम परमेश्वर हो। अच्छा, राम ने उससे पूछा "भाई, यदि तुम परमेश्वर नहीं हो, तो हो क्या? हमें बताओ।" उसने कहा, "मैं यह देह हूँ।" बहुत ठीक! यदि तुम मिथ्या व्यक्तित्व मात्र हो, यदि तुम यह शरीर मात्र हो, तो हमें बताओ कि तुम्हारे सिर पर कितने बाल हैं, क्या सिर तुम्हारा नहीं है? उसने कहा, है, अवश्य है। यदि सिर तुम्हारा है तो कृपया हमें बताइये तुम्हारे सिर पर के बालों की संख्या कितनी है। हमें बताइये कि तुम्हारे शरीर में कितनी हड्डियाँ हैं (यह मनुष्य शरीर-विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था)। राम ने उससे कहा—तुमने सवेरे भोजन किया ही होगा; हमको बताइये कि सवेरे तुमने जो भोजन किया था, वह कहाँ है? वह आँतों में है? अथवा गुर्दे, पेट, या फेफड़ों में? कहाँ है इस समय वह भोजन? वह कोई उत्तर नहीं दे सका। फिर राम ने कहा—तुम अपने सिर के बालों की संख्या नहीं बता सकते, तब भी बाल तुम्हारे हैं। तुम अपनी हड्डियों और नसों की गिनती चाहे बता सको या न बता सको, किन्तु हड्डियाँ और नसें तुम्हारी हैं। आज सवेरे तुमने जो भोजन किया था वह अभी कहाँ है, यह चाहे तुम बता सको या न बता सको, किन्तु शरीर है तुम्हारा। भोजन तुमने ग्रहण किया था, किसी

५११

दूसरे व्यक्ति ने नहीं खाया था। इसी तरह तुम्हारी बुद्धि आकाश के तारों की संख्या बता सके या न बता सके, तारे सब तुम्हारे हैं। इंग्लैंड में इस समय क्या हो रहा है, तुम्हारी बुद्धि चाहे बता सके या न बता सके, तथापि इङ्गलैंड तुम्हारा है। बुध ग्रह में क्या हो रहा है, चाहे तुम न बता सको, पर बुध ग्रह है तुम्हारा। यदि तुम ये बातें नहीं बता सकते तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि वे तुम्हारी नहीं हैं। ये बातें कौन बतलाये? ये बातें बताना उसका काम है जो सान्त हो। तुम बता सकते हो कि वह तसवीर किसकी है (दीवाल की एक तसवीर की ओर इशारा कर), क्योंकि तुम्हें चित्र की उपस्थिति का भान है किन्तु तुम चित्र नहीं हो; अधिष्ठान और वस्तु भिन्न होती हैं। इस चित्र की बातें तुम इसलिए बताते हो कि वह तुमसे भिन्न है। 'तुम' शब्द यहाँ परिच्छिन्न अर्थ में ग्रहण किया जा रहा है। किन्तु यदि तुम वह परम तत्व हो, यदि तुम्हीं हरेक वस्तु हो, यदि तुम्हारे सिवा और कुछ नहीं है, यदि तुम अनन्त हो, यदि ऐसी कोई और वस्तु नहीं है जो तुम्हें परिमित करती, तो तुम्हारे विषय में कौन बतावेगा? देखना और कहना-सुनना वहाँ रुक जाता है। उनकी पहुँच वहाँ तक नहीं होती। शब्द वहाँ नहीं पहुँच सकते।

एक दूसरे मनुष्य ने यह प्रश्न किया, "तुम किस सम्प्रदाय के हो? हिन्दू हो, ब्राह्मण हो?" राम ने उत्तर दिया "नहीं"। "क्या तुम ईसाई हो, यहूदी हो, तुम क्या हो? किस जाति, किस धर्म, किस सम्प्रदाय से तुम संबंध रखते हो?" यदि कोई वस्तु किसी की होती है, तो वह उसकी सम्पत्ति है। किसी जड़-वस्तु या पशु पर किसी का अधिकार

होता है, और ये चीजें उस व्यक्ति की सम्पत्ति मानी जाती हैं, या उसके अधिकार में होती हैं। अरे, क्या राम कोई जड़ वस्तु है? राम किसी सम्पत्ति की तरह नहीं है, जो किसी न किसी की होनी ही चाहिए। वह पशु नहीं है। फिर क्यों वह किसी का हो? सारी दुनिया उसकी है। अमेरिका राम का है। राम तुम्हारी निज आत्मा है। तुम सब मेरे हो, और भारत भी मेरा है। ईसाइयत, मुसलमान धर्म, यहूदी-धर्म, हिन्दू धर्म, वेदान्त, सब के सब राम के हैं।

लघु आत्मायें भले ही अपनी स्वाधीनता बेच दें, परन्तु तुम कदापि ऐसा नहीं करोगे।

लोग कहते हैं कि इस देश में हम स्वाधीन हैं। राजनैतिक स्वाधीनता भले ही उन्हें प्राप्त हो, किन्तु ओह! धार्मिक गुलामी, अमेरिका की सामाजिक गुलामी!! राम तुम्हें बंधन से मुक्त करता है, स्वतंत्रता देता है-विचार और कार्य की स्वतंत्रता प्रदान करता है। जो धर्म राम सिखलाता है, कुछ लोग उसे वेदान्त की उपाधि देते हैं। किन्तु उसे किसी उपाधि की आवश्यकता नहीं। सच्चा वेदान्त केवल वेदों तक परिमित नहीं है। वह तुम्हारे हृदयों में विद्यमान है। इसलिए राम एक बार तुम्हें सदा के लिए बता देना चाहता है कि राम केवल भारतवासी नहीं है। राम अमेरिकन भी है। राम को केवल हिन्दू न मानो, राम ईसाई भी है। राम को इस या उस मत अथवा सम्प्रदाय का गुलाम न समझो। राम आपका अपना आप है, स्वयं स्वाधीनता है।

एक दूसरे मनुष्य ने कहा, "अच्छा, यदि आप परमेश्वर हैं, यदि आप ईसा के समान हैं, तो ईसा ने बड़े-बड़े अद्भुत कार्य किये थे, आप भी कोई अलौकिक कार्य करो, तब हम

तुम पर विश्वास करेंगे।" राम कहता है, "भाई, ईसा ने अलौकिक कार्य किये थे, फिर भी उस पर विश्वास नहीं किया गया था। उसे उत्पीड़ित किया गया, उसे सूली दी गई थी। क्या अलौकिक कार्य तुम्हें विश्वास दिला सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं"।

और अलौकिक कार्य करने का अर्थ क्या है? यह सब है क्या? यदि संसार के सारे चमत्कार यह शरीर कर दिखावे, तो उससे मेरे परमेश्वरत्व, ब्रह्मत्व में रंच मात्र भी वृद्धि न होगी। मैं यह देह नहीं हूँ। मैं तुम्हारी अपनी आत्मा भी हूँ। यदि यह एक देह अद्भुत कार्य करती है, तो क्या हुआ? दूसरी देह अद्भुत काम नहीं करती, किन्तु मैं वह भी हूँ। यदि यह देह तो अद्भुत कार्य सम्पन्न करेगी तो तुम इस देह को परमेश्वर मान लोगे जो एक महान् अनर्थ की बात होगी? ऐसा तुम्हें कदापि नहीं करना चाहिए। राम चाहता है, कि तुम अपने निजात्मा को ही परमेश्वर समझो। केवल इस देह को परमेश्वर मत बनाओ। अद्भुत कार्यों के द्वारा और अपने विशेष व्यक्तित्व की धाक जमा कर राम तुम्हारी स्वाधीनता नहीं हरण करना चाहता। तुम्हें गुलाम बनाना तुम्हारी स्वतंत्रता छीनना राम का काम नहीं, जैसा कि पूर्ववर्त्ती पैगम्बर करते आये हैं।

तुम चाहते हो कि यह देह कोई अलौकिक कार्य करे, किन्तु यह देह मैं नहीं हूँ। मैं तो वही ईश्वर हूँ, जिसने संसार रूपी यह महान् अलौकिक कार्य पहले ही से कर रक्खा है। वही, वही ईश्वर हूँ मैं। यह विशाल विश्व मेरा अलौकिक कार्य है। मैं वही हूँ, यह सम्पूर्ण विश्व जिसकी कारीगरी है।

भारतवर्ष में यह शरीर जिस घर में रहता था, उसमें

एक लड़का भीखाकरी करता था। हर घड़ी राम के संसर्ग में रहने के कारण, एक दिन वह लड़का एक ऊँचे भवन की सबसे ऊँची छत पर चढ़कर उच्च स्वर से पुकारने लगा, "मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ।" जिस मकान की चोटी से वह चीख रहा था उसके अगल बगल के मकानों में जो लोग रहते थे उन्होंने उससे कहा, "यह क्या बक रहे हो, यह क्या कह रहे हो? क्या तुम कहते हो कि तुम ब्रह्म हो? यदि तुम ब्रह्म हो, तो छत से फांद पड़ो और देखें हम कि तुम्हें चोट लगती है या नहीं। यदि तुम्हारे चोट न लगी तो हम तुम्हें ईश्वर मान लेंगे। यदि तुम्हारे चोट लगी तो हम तुम्हें मार डालेंगे, तुम्हें पीड़ा देंगे। तुम ऐसा क्यों बकते हो? ऐसी अधार्मिक बात कहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।"

बच्चे में ब्रह्म-भावना की उमंग भरी हुई थी। वह बोला, "ऐ मेरे निजात्मन्! मैं नीचे कूदने के लिए तैयार हूँ, मैं जिस नीचे से नीचे गढ़े को तुम बताओगे उसमें कूदने को तैयार हूँ। मैं जिस समुद्र को तुम बताओ उसमें भी मैं फाँद पड़ूँगा, किन्तु कृपा करके मुझे वह स्थान बताइये, जहाँ मैं पहले ही से विद्यमान न हूँ, क्योंकि फाँदने के लिए ऐसा कोई स्थल भी तो होना चाहिए, जहाँ हम फाँद सकें और जहाँ हम पहले ही से विद्यमान न हों, मुझे ऐसा स्थान बताइये जो मुझसे खाली है, जहाँ मैं अभी विद्यमान नहीं हूँ। मैं तो देवताओं का देवता हूँ। बस, जहाँ मैं पहले ही से विद्यमान नहीं हूँ, ऐसा स्थान मुझे बताइये और मैं फाँद पड़ूँगा। जो पहले ही से सर्वत्र व्याप्त है वह कैसे फाँद सकता है? फाँद तो केवल वही सकता है, जो परिमित हो, एक जगह हो और दूसरी जगह न हो।"

तब वह सज्जन, जिसने लड़के से फाँद पड़ने के लिए कहा था, बोला, "वाह, क्या तुम वह परमेश्वर हो? तुम तो देह हो, देह।" लड़के ने कहा, "यह शरीर तुम्हारी अपनी कल्पना से बना है। मैं यह शरीर नहीं हूँ। तुम्हारे प्रश्न और आपत्तियाँ मुझ तक नहीं पहुँच सकतीं। उनकी पहुँच केवल तुम्हारी कल्पना तक है। इसी तरह, वह कैसे कूद-फाँद सकता है अथवा कैसे ऐसे काम कर सकता है, जो पहले ही से सर्वत्र व्यापक है? एक भी ऐसा स्थल नहीं है, जहाँ वह पहले ही से विद्यमान न हो। मैं तो वही हूँ। यदि मैं केवल इस एक शरीर में मौजूद होऊँ और उस शरीर में, होऊँ तो अवश्य मुझे इस देह द्वारा ऐसे अद्भुत कार्य करने चाहिए ताकि मैं संसार में अपनी परमेश्वरता को सिद्ध करूँ। पर सारे शरीर मेरे हैं। पहले ही से वे मेरे अपने हैं। मुझे केवल अपना अधिकार लेना है। मुझे कुछ बनाना नहीं है; हरेक वस्तु मेरे द्वारा बनी है।"

दूसरा मनुष्य एक और प्रश्न लेकर आया। "वेदों के प्रति आपके भाव क्या है? आपके उनके संबंध में क्या विचार हैं?" राम कहता है. हम वेदों को उसी दृष्टि से देखते हैं जैसे रसायन विद्या को।" "क्या तुम वेदों में विश्वास करते हो?" राम कहता है, "मैं वेदों को जानता हूँ। मैं तुमसे उनके अध्ययन की सिफारिश करता हूँ।" तो क्या हमें वेदों को उसी प्रकार मानना चाहिए जैसा हम इंजिल को मानते हैं?" राम कहता है. तुम इंजील का सत्यानाश कर रहे हो। वेदों को उस ढंग से कदापि न पढ़ो। जिस प्रकार से तुम रसायन विद्या या ज्योतिष की किसी पुस्तक को पढ़ते हो, उसी प्रकार वेदों को भी पढ़ो। अन्ध-विश्वास

के साथ, किसी बात पर पूरी तरह विश्वास मत करो, जैसा कि वेदों के विषय में कुछ हिन्दू करते हैं।" राम कहता है, "जब तुम रसायन विद्या की कोई पुस्तक उठाते हो, तब तुम उसके सिद्धान्तों पर इसलिए नहीं विश्वास कर लेते कि लेवोइसर या लाईबिग ने उन्हें निर्धारित किया है। इन बातों को दूसरों के प्रमाणों पर ग्रहण न करो। जो मत दूसरों के प्रमाणों पर आधारित है वह कोई मत ही नहीं है। स्वयं प्रयोग करो। स्वयं उनकी परीक्षा करो और ठीक वैज्ञानिक ढंग से उन्हें अपनाओ। अपना स्वाधीनता मत बेचो, अपनी स्वाधीनता सदा बनाये रक्खो। वेदों को इस प्रकार से पढ़ो और केवल तभी तुम वेदों का भाव ग्रहण कर सकोगे, अन्यथा तुम सदा यथार्थ तत्व से वंचित रहोगे। वेदों की शिक्षा किसी आलोचना, प्रश्न या शंका से डरती नहीं। आपके सम्पूर्ण पाश्चात्य विज्ञान को उनकी जाँच पड़ताल करने दो, आपका पाश्चात्य प्रकाश (यद्यपि प्रकाश सदा पूर्व से आता है, किन्तु मान लो कि यह पाश्चात्य प्रकाश है) अपनी चकाचौंध करनेवाली किरणों द्वारा प्रकाश की बढ़िया फैलाकर श्रुति के सुंदर मुखमंडल को प्लावित कर दे। किन्तु उसे एक भी काला धब्बा, एक भी काला चिह्न श्रुति के सुन्दर चेहरे पर नहीं मिल सकता। वेदों का विज्ञान से कोई विरोध नहीं। आपके आजकल के आविष्कार और अनुसन्धान तो श्रुति महारानी के केवल चरण धोने के लिए हैं। वे तो अधिकाधिक वेदान्त के पक्ष की पुष्टि कर रहे हैं।

जिन लोगों ने शुद्ध चित्त से वेदों का अध्ययन किया है, उन सब ने मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा की है। शोपनहार वह दार्शनिक है, जो कभी किसी दूसरे दर्शन शास्त्र की तारीफ

नहीं करता था, जो अपने दर्शन को छोड़कर और सब दर्शनों को गाली तक देता था, वेदों के सम्बन्ध में कहता है, "संपूर्ण संसार में उपनिषदों (वेद) के अध्ययन से अधिक हितकर और उन्नायक और कोई अध्ययन नहीं है। जीतेजी उनसे सन्तोष मिला है, और मृत्यु में भी मैं उनसे सन्तोष पाऊँगा।"

शोपेनहार की इस उक्ति पर टीका करता हुआ मैक्स-मूलर लिखता है—

"यदि ऐसे स्वतन्त्र विचार के दार्शनिक के शब्दों को भी किसी प्रकार के समर्थन की आवश्यकता है, तो दुनिया भर के धर्मों और यूरोप के सभी दर्शन शास्त्रों का आजीवन अध्ययन के अनन्तर मैं नम्रतापूर्वक शोपेनहार के अनुभव का अनुमोदन करने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

"यदि तत्वज्ञान का उद्देश हो शान्ति और सुखपूर्वक मरने की तैयारी, तो उसके लिए वेदान्त दर्शन अर्थात् वेदों के तत्वज्ञान से बढ़कर मैं किसी और तैयारी को नहीं जानता।"

एक और मनुष्य यह प्रश्न लेकर आया। "इधर देखिये, आपका वेदान्त भारतवर्ष की ही संकीर्ण सीमाओं के भीतर क़ैद है।" ये प्रश्न जिन पर आगे विचार किया जायगा बहुत ही महत्त्वपूर्ण और बहुत ही रोचक हैं। उसका कहना था कि ईसाई धर्म तो सम्पूर्ण संसार में फैल गया है और वेदान्त भारतवर्ष की संकीर्ण सीमाओं में ही बद्ध है, और वह भी केवल शिक्षित वर्गों का धर्म है, जनसाधारण का नहीं। राम कहता है, यदि वास्तव में ईसाइयत कौमों पर शासन करती होती, तो कहीं अच्छा होता। यदि ईसाइयत वास्तव में यूरोप में प्रचलित होती तो राम के लिए बड़े हर्ष की बात होती! किन्तु यूरोप या अमेरिका में जो प्रचलित है

वह ईसाईयत नहीं है, वह तो गिरजाघरपन यानी ईसाइयत का स्वांग मात्र है।चर्चियेनिटी|अर्थात् गिरजाघर की पूजा है।

इसके अतिरिक्त, यदि तुम समझते हो कि असली ईसाईयत ही जनसाधारण में फैली हुई है और यह बात ईसाईयत के पक्ष में बहुत बड़ी दलील है, तो भाई, ऐसे भ्रम में मत पड़ो। शैतान के धर्म के माननेवाले ईसाई धर्म के अनुयायियों से भी कहीं अधिक हैं। आप जानते होंगे कि पापाचार, बुरी वासनायें, शत्रुता, विद्वेष, मनोविकार, कामुकता, आदि ही शैतान का धर्म है, और शैतान का धर्म ईसाईयत से कहीं अधिक प्रचलित है।

लंदन के पार्लियामेंट भवन में एक बार एक मनुष्य, जो बड़ा प्रसिद्ध वक्ता था, बीच ही में उखाड़ दिया गया। उसे लोगों ने आगे न बोलने दिया। आप जानते हैं कि बाद में उसने क्या कहा? उसने कहा, "क्या हुआ, यदि बहुमत तुम्हारे पक्ष में है।" उसने दूसरे पक्ष वालों से कहा, रायों को तोलना चाहिए, उनकी गिनती नहीं होनी चाहिए। बहुमत सच्चाई या यथार्थता का कोई प्रमाण नहीं है।

एक समय ऐसा था जब गैलीलियो कोपरनिकस के मत का समर्थन करता था वह कहता था कि पृथिवी। घूमती है, सूर्य नहीं घूमता। वह पूर्ण अल्पमत में था, वास्तव में वह अकेला ही था। और सारा विशाल विश्व उसके विरुद्ध था, सम्पूर्ण बहुमत उसके विरुद्ध था। किन्तु आज सत्य क्या है? अल्पमत की बात सच्ची निकली या बहुमत की? बहुमत और अल्पमत का कुछ महत्व नहीं। एक समय था जब सम्पूर्ण बहुमत रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के पक्ष में था। एक ऐसा समय आया जब वही बहुमत दूसरे पक्ष में हो

गया। एक समय वह था, जब ईसाइयत केवल ग्यारह शिष्यों के ही अल्पमत तक परिमित थी। एक समय ऐसा आया जब कि ईसाइयत, गिरजाघरपन ने देखने-सुनने में बहुमत को अपने पक्ष में कर लिया। बहुमत और अल्पमत कोई महत्व नहीं रखते। हम ठोस शिला पर खड़े हैं, हम सत्य पर स्थित हैं, और सत्य अवश्य विजयी होगा।

दूसरे मनुष्य ने कहा, "देखिये, ईसाई कौमें ही दुनिया में सर्वत्र उन्नति क्यों कर रही हैं? केवल ईसाई राष्ट्रों में ही उन्नति और सभ्यता है"। राम कहता है, "भाई, यदि यूरोप और अमेरिका भारतवर्ष, चीन और जापान से राजनैतिक तथा सामाजिक मामलों में आगे बढ़े हुए हैं तो ईसाईयत उसका कारण नहीं हो सकती। मिथ्या तर्क का उपयोग न करो। यदि सभ्यता और वैज्ञानिक उन्नति का सारा श्रेय ईसाइयत के सिर बाँधा जाता है, तो कृपा करके हमें बतलाइये कि जब गैलीलियो (Galileo) ने वह छोटा सा आविष्कार किया था तब क्यों ईसाईयों ने उसके साथ ऐसा बुरा बर्ताव किया? ब्रूनो (Bruno) जलाया गया था। किसने उसे जलाया था? ईसाईयत ने ईसाईयत ने! ईसाईयत ने ही हक्सले स्पेंसर और डारविन का घोर विरोध किया। उन्हें अपने आविष्कारों, उन्नति तथा स्वाधीनता के भावों के प्रतिपादन में ईसाईयत द्वारा कभी कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। ईसाईयत के विनष्टकारी प्रभावों के होते हुए भी वे आज जीवित हैं। शोपेनहार की क्या गति हुई थी? क्या आप जानते हैं कि उसको कैसे निर्वाह करना पड़ता था? शोपेनहार को उतना ही महान् बलिदान करना पड़ा था जितना कि ईसा ने किया था। ईसा अपने विश्वासों के कारण मर

गया और शोपेनहार अपने विश्वासों के लिए जीवित रहा। और आपको जानना चाहिए कि अपने विश्वासों के पीछे मर जाना उतना कठिन नहीं जितना उनको लेकर जीते रहना। क्या आप जानते हैं कि शोपेनहार के स्वाधीन भाव को रोकने वाला कौन था? उसकी उत्तरकालीन पुस्तकों में वह तेज, वह शक्ति नहीं है जिसके कारण वह अपने पहले लेखों में विख्यात हुआ था। हेगल और कैन्ट के दर्शनों में शिथिलता और कमजोरी कैसे आई—ईसाइयत के कारण! क्या आप जानते हैं कि फिचेट (Fichte) को अपना अध्यापन कार्य क्यों छोड़ना पड़ा था, वह अपने देश से क्यों निकाला गया था? कारण क्या था? ईसाइयत थी। प्रारम्भ से ही ईसाइयत ने उन्नति में कोई सहायता नहीं दी, वरन् ईसाइयत के विरोध में ही उसे आगे बढ़ना पड़ा। कृपया तथ्यों पर अविचार मत करो।

एक भारतप्रवासी अंग्रेज, जो कुछ दिनों भारतवर्ष में रह चुका था, इङ्गलैंड लौटने पर अपनी स्त्री से अपनी शक्ति और बल का दर्प करने लगा। वे अपने देहाती घर में रहते थे। एक मौके पर एक भालू आ पहुँचा। यह भारतप्रवासी अंग्रेज तुरन्त पास के पेड़ की चोटी पर चढ़ गया। उसकी स्त्री ने एक हथियार उठा कर उस भालू को मार डाला। तब वह भी पेड़ से उतरा। थोड़ी देर में वहाँ कुछ दूसरे लोग आ गये। उन्होंने पूछा, भालू किसने मारा? उसने कहा, "मैंने और मेरी स्त्री ने भालू का वध किया है।" किन्तु बात ऐसी नहीं थी। काम पूरा हो जाने पर जिस तरह उस अंग्रेज का यह कहना ठीक न था कि मैंने भालू मारा है, उसी तरह तुम्हारी ईसाइयत का हाल है।

विज्ञान की सारी उन्नति, यूरोप और अमेरिका की सम्पूर्ण दार्शनिक उन्नति, उनके आविष्कार और अनुसंधान कैसे सम्पन्न हुए? वेदान्त वृत्ति को अमल में लाने से। वेदान्त का अर्थ है स्वाधीनता, स्वतंत्रता। इस वैज्ञानिक उन्नति का कारण क्या है? स्वाधीनता की भावना, स्वतंत्रता की प्रवृत्ति, बन्धन-मुक्ति की भावना, शारीरिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति लापरवाही का भाव। यही समस्त उन्नति का कारण है और यही है वेदान्त का अज्ञात रूप से व्यवहार लाना। तुम इसे सच्ची ईसाईयत भी कह सकते हो। सच्ची ईसाइयत वेदान्त से भिन्न नहीं है, यदि तुम उसे ठीक-ठीक समझो। लोग कहते हैं कि हमने भूमण्डल से गुलामी प्रथा उठा दी है, और हमने और भी बहुत से सुधार किये हैं। राम कहता है, "भाइयो! क्या गुलामी सचमुच हटा दी गई? अरे, राम तो बहुत चाहता है, कि गुलामी हट गई होती! यदि हम यह कथन भी मान लें कि गुलामी का अन्त हो चुका है, तो उसके दूर होने का कारण ईसाइयत कदापि नहीं है। यदि ईसाइयत में गुलामी को हटा सकने वाली कोई चीज होती तो गत सत्रह सौ साल में ईसाइयत ने गुलामी क्यों नहीं दूर कर दी? तथ्य कुछ दूसरा है। लोग अमेरिका को आये थे। यूरोपीय राष्ट्र स्थानान्तर हो रहे थे, दूसरी क़ौमों से उनका संसर्ग हो रहा था, और उनको शिक्षा दी जा रही थी, उनके हृदय विशाल हो रहे थे। यह असली, व्यावहारिक वेदान्त है। गुलामी दूर होने का यही कारण था; न कि ईसाइयत। राजनैतिक और सामाजिक अवस्थायें लोगों के हृदय और अन्तःकरण को आन्दोलित कर रही थीं। यदि अच्छी बातों का श्रेय तुम ईसाइयत

को देना चाहते हो तो फिर नास्तिकों को दण्ड देना, जादूगरनियों को जलाना, सिर काटने का चक्र चलाना और आप जानते होंगे कि नास्तिकों के लिए न्याय-व्यवस्था क्या वस्तु थी. एक समय सैन फ्रांसिस्को में भी उसका बोलबाला था, कैसा दारुण ! कैसी भीषण !! छाती से खून निकालना. अरे राम को इनकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं—ये सब बातें किसके सिर थोपोगे ?

राम अब बहुतेरे प्रश्नों और उत्तरों को छोड़ देता है। उन पर हम फिर कभी विचार करेंगे।

एक प्रश्न और, "भारतवर्ष राजनैतिक दृष्टि से क्यों इतना गिरा हुआ है ?" लोग कहते हैं कि वेदान्त भारत के पतन का कारण है। यह बिलकुल ग़लत है। भारत की दुर्दशा का कारण वेदान्त का अभाव है। आप जानते हैं कि राम अपने को हरेक देश का कहता है। राम यहाँ एक भारतवासी की, एक हिन्दू की, एक वेदान्ती की हैसियत से नहीं आया है। राम तो राम के रूप में आता है, जिसका अर्थ है सर्वव्यापक राम। राम न आपकी चापलूसी करना चाहता है और न भारतवासियों की। राम भारतवर्ष, अमेरिका या अन्य किसी वस्तु पर नहीं खड़ा है। राम का आधार है सत्य, पूर्ण सत्य, सत्य के सिवा और कुछ नहीं। राम सदा इसी आधार पर, इसी दृष्टिकोण से बात करता है राम न भारत की चापलूसी करना चाहता है और न अमेरिका की। सत्य बात यह है कि जब तक वेदान्त भारत की जनता में प्रचलित था, तब तक वह अपनी महिमा के उच्चतम शिखर पर था, तब उसका चक्रवर्ती राज्य था, वह समृद्धिशाली था। फिर एक ऐसा समय आया जब कि यह वेदान्त एक

विशेष श्रेणी के लोगों के हाथों में रह गया। भारत की जनता वेदान्त से वंचित कर दी गई और बस भारत का पतन होने लगा। जनता से वेदान्त का प्रचार जाता रहा। भारतीय जनता एक ऐसे धर्म में विश्वास करने लगी जिसमें 'मैं गुलाम हूँ, मैं गुलाम हूं, ऐ परमेश्वर! मैं तेरा गुलाम हूँ सिखलाया जाता था। यह धर्म यूरोप से भारत में पहुँचा था। यह एक ऐसा कथन है जिसे सुनकर ऐतिहासिक और दार्शनिक कहे जानेवाले लोग चकित होंगे, जो यूरोपियनों को आश्चर्य में डाल देगा, किन्तु राम ने बिना समझे बूझे यह बात नहीं कही है। यह एक ऐसा कथन है, जो सिद्ध हो सकता है, जैसे गणित में दो और दो चार। जो धर्म यह चाहता है कि हम अपने आपको अपनी आत्मा को हेय समझें, उसकी निन्दा करें और अपने को कीड़े मकोड़े, अभागे, गुलाम, पापी कहें, वह धर्म भारतवर्ष में बाहर से आया था, और जब जन-साधारण ने उसे अपना लिया तभी भारत का अधःपात शुरू हुआ। यहाँ आप पूछेंगे फिर यूरोपियनों तथा अमेरिकनों का अधःपतन क्यों नहीं हुआ? यूरोपियन भी तो गुलामी में विश्वास करते हैं—"ऐ परमेश्वर! हम तेरे गुलाम हैं।" राज-नैतिक और सामाजिक दृष्टियों से उनका भी भारतवासियों का सा पतन क्यों नहीं हुआ? इसके लिए दृष्टान्त रूप से एक कहानी कही जायगी, जिसका जिक्र प्रकृतिवादी और विकासवादी लेखक प्रायः किया करते हैं। उनका कहना है कि कभी कभी कमजोरी भी बचाव और जीवन का कारण हो जाती है। सदा योग्यतम ही जीवित नहीं रहते।

टिड्डियों की बहुत बड़ी संख्या एक ओर उड़ी जा रही थी। मार्ग में कुछ टिड्डियों के पंख जाते रहे और वे नीचे गिर

पड़ीं। शेष स्वस्थ टिड्डियाँ उड़ती गईं। किन्तु जब वे एक पहाड़ी पर पहुँचीं जिसमें आग लगी हुई थी, तो सबकी सब नष्ट हो गईं। इस उदाहरण में दुर्बल बचे और योग्यतम नष्ट हुए।

भारतवासी जब कोई बात कहते हैं तो मन से कहते हैं। वे सच्चे हैं और धर्म को अपना सर्वस्व मानते हैं। जब उन्होंने ऐसी प्रार्थना की, "ऐ परमेश्वर! मैं तेरा गुलाम हूँ; ऐ परमेश्वर! मैं तेरा अधम सेवक हूँ; ऐ परमेश्वर! मैं पापी हूँ।" तब वे भीतर और बाहर एकसाँ थे। जब भारतवर्ष की जनता इस तरह प्रार्थना करती थी, तब उसका हृदय शुद्ध था। बस कर्म के अटल और निष्ठुर नियम के अनुसार उन्हें अपनी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं को पूर्ण होते देखना पड़ा, और उनकी कामनायें और इच्छायें सफल हुईं। वे गुलाम बना दिये गये। किसके द्वारा? आप पूछेंगे—क्या उन्हें परमेश्वर ने गुलाम बनाया। क्या परमेश्वर की कोई सूरत है, क्या परमेश्वर की कोई आकृति है? परमेश्वर अपने निराकार रूप से तो उन पर शासन कर नहीं सकता था। परमेश्वर आया। कौन परमेश्वर? प्रकाशों का प्रकाश, श्वेतरूप में। वह श्वेत रूप आसमन, अंग्रेजों के स्वच्छ चमड़े के भेष में आया और उन्हें गुलाम बना दिया। यही सारा रहस्य है। इस प्रकार वास्तव में भ्रान्त ईसाईयत अथवा भ्रान्त ईसाई आडम्बर ने (गिरजाघरपन) ही भारत को पतन के गर्त में ढकेला है।

जाओ और भारतवर्ष की वर्तमान दशा देखो, और राम की बात का तुम्हें विश्वास हो जायगा। भारत के दूसरे स्वामी या साधू जो कुछ कहते-सुनते हैं, यदि आप केवल उस पर

विश्वास करेंगे तो धोखा खायँगे। भारत-पतन का कारण एकमात्र केवल वेदान्त का अभाव है। अब, गुलामी की उसी भावना के कारण यूरोपियन क्यों नहीं गुलाम बन गये? यूरोपीय लोग धर्म की अपेक्षा धन की चिन्ता अधिक करते हैं। उनकी प्रार्थनाओं में, उनके धार्मिक कृत्यों में, जैसा कि पहले आपको बताया जा चुका है, ईश्वर केवल एक फालतू चीज़ है, उसे उनके कमरे झाड़-बुहार कर साफ करने पड़ते हैं। उनका धर्म केवल तसवीरों, चित्रों की तरह बैठक को सजाने के लिए है। जो प्रार्थनायें उनके हृदय और सच्ची अन्तरात्मा से निकलती थीं, वे धन-सम्पत्ति और सांसारिक लाभ के लिए होती थीं, भगवान् की गुलामी के लिए नहीं। इसीलिए उनका उत्थान हुआ। यह ठीक कर्म के नियम के अनुसार है। इतिहास हमें बतलाता है कि जब तक भारत के जन साधारण में वेदान्त का प्रचार रहा, तब तक भारत समृद्धिशाली था।

किसी समय में फिनीशिया के रहनेवाले बड़े शक्तिशाली थे किन्तु वे कभी भारत पर चढ़ाई करके विजय नहीं कर सके। मिस्री भी एक समय बड़ी उन्नति पर थे, किन्तु वे भी भारत पर अपना राज्य नहीं जमा सके। एक दिन ईरान का सितारा बुलन्दी पर था, परन्तु कभी उन्हें भारत पर दुश्मनी की नज़र डालने का साहस नहीं हुआ। रोमन सम्राट्, जिनकी गिद्ध-दृष्टि सारे संसार पर पड़ती थी, सम्पूर्ण ज्ञात पृथ्वी पर जिनका शासनाधिकार था, भारत को कभी अपने शासन में लाने का साहस नहीं कर सके—यूनानी जब शक्तिशाली थे तब सदियों तक एक भी बुरी दृष्टि भारत पर नहीं डाल सके। सिकन्दर नाम का एक सम्राट् वहाँ पहुँचा

था जो भूल से महान् सिकन्दर कहलाता है। उन दिनों भी वेदान्त की भावना जनता में प्रचलित थी, वे उससे वंचित नहीं किये गये थे। भारतवर्ष पहुँचने से पहले सिकन्दर ने सारा ज्ञात संसार जीत लिया था। ऐसा बड़ा शक्तिशाली सिकन्दर, जिसका बल बढ़ाने के लिए विपुल ईरानी सेना उसके साथ थी, सम्पूर्ण मिस्री सेना का जो अध्यक्ष था, भारतवर्ष जाता है, और एक छोटा-सा भारतीय राजा पुरु उसका सामना करता है और उसे भयभीत कर देता है। इस भारतीय राजा ने उस 'महान्' सिकन्दर को नीचा दिखाया, और उसकी सारी सेनाओं को लौटा दिया। उसकी सेनायें पस्त हो गईं और महान् सिकन्दर लौटने को बाध्य हुआ। यह सब कैसे हुआ था? उन दिनों भारत की जनता में वेदान्त प्रचलित था। तुम इसका प्रमाण चाहते हो? प्रमाण के लिए भारत का वह वृत्तान्त पढ़िये, जो उन दिनों के यूनानी छोड़ गये हैं, इतिहास में तत्कालीन यूनानियों, सिकन्दर के साथियों, का लिखा हुआ भारत का हाल पढ़िये। तुम देखोगे कि उस समय जन-साधारण में असली वेदान्त का प्रचार था और लोग बलिष्ठ थे। इसीलिए महान् सिकन्दर को लौटना पड़ा था।

फिर एक ऐसा समय आया जब एक साधारण डाकू महमूद गज़नवी ने सत्रह बार भारतवर्ष को लूटा। सत्रह बार भारत से वह धन-दौलत ले गया जो उसके हाथ पड़ गई। उन दिनों की जनता का वृत्तान्त पढ़िये, और आप देखेंगे कि उस समय जन साधारण का धर्म वेदान्त के ठीक उलटा हो गया था, जैसे उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव! उस समय भी वेदान्त प्रचलित था, किन्तु केवल कुछ चुने

हुए लोगों में। जनता उसे त्याग चुकी थी और इस प्रकार भारत का पतन हुआ था।

लोग कहते हैं कि राम त्याग का प्रचार करता है और त्याग तो हमें ग़रीब बना देगा। प्यारे, यह बात ठीक नहीं है। यह सच है कि वेदान्त सीखने के लिए तुम्हें वनों की शरण लेनी पड़ती है, हिमालय के जंगलों में अगम्य एकान्त स्थानों में जाना पड़ता है। किन्तु वेदान्त ऐसा उपदेश कदापि नहीं देता, कि तुम्हें सदा फ़क़ीरी की ज़िन्दगी बसर करना चाहिए। कभी नहीं, कभी नहीं। वनों में जाकर निवास करना तो ठीक उसी तरह है जिस तरह विद्यार्थियों को महाविद्यालय जाना पड़ता है। क्या यह सच नहीं है कि कोई भी विज्ञान या तत्वज्ञान सीखने के लिए तुम्हें एकान्त में रहना चाहिए, ऐसे स्थान में तुम्हें रहना चाहिए, जहाँ परेशानियाँ न हों? तुम्हें ऐसे स्थान में रहना चाहिए जहाँ तुम शान्तिपूर्वक बिना किसी गुलगपाड़े के अपना अध्ययन चला सको। इसी प्रकार यदि भारतवासी जंगल में जाकर रहता है, यदि वह वनों में निवास करता है, तो वह केवल अपने को ऐसे स्थान में रखने के लिए जाता है, जहाँ वह विज्ञानों के विज्ञान का पूर्ण ज्ञाता बन सके, जहाँ वह वेदान्त के सच्चे भाव का पूर्ण साक्षात् कर सके। आप जानते हैं कि वेदान्त रसायन विद्या की तरह एक प्रयोगात्मक विज्ञान है। रसायन विद्या में तब तक आप कोई उन्नति नहीं कर सकते जब तक आप उसके अनुरूप प्रयोग न करें। इसी भाँति वह मनुष्य वेदान्त के बारे में कुछ नहीं जान सकता है जो अपनी बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रयोग नहीं करता। इन्हीं आध्यात्मिक प्रयोगों के लिए एवं इसी बौद्धिक ज्ञान को प्राप्त

करने के लिए लोगों को वनों में जाकर रहना पड़ता है। वन तो विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के तुल्य हैं। ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर वे संसार में आकर उसका प्रचार करते हैं, नित्य के जीवन में उसे घटाते हैं और लोगों को बतलाते हैं कि वे तत्वज्ञान की इस पद्धति को कैसे व्यवहार में ला सकते हैं। आप जानते होंगे कि प्रत्येक ब्राह्मण या हिन्दू को जो पाँच वर्ष वन में बिताने पड़ते थे उनमें वह इसी ज्ञान को प्राप्त करता था और इसे प्राप्त कर उसे दुनिया में आकर काम करना पड़ता था। उनमें से कुछ तो साधारण गृहस्थी के कर्त्तव्यों का भी पालन करते थे। वेदान्त का पूर्ण ज्ञान होने के अनन्तर प्रत्येक व्यक्ति को साधू नहीं बनना पड़ता। यह ठीक ऐसी बात है जैसे कि बहुत से विद्यार्थी साहित्य-शास्त्री या विज्ञान शास्त्री की उपाधि तो प्राप्त करते हैं परन्तु उन सबसे अध्यापक या आचार्य बनने की आशा नहीं की जाती। कुछ मेजिस्ट्रेट होते हैं, कुछ बड़े व्यापारी और कुछ अध्यापक भी हो जाते हैं।

इसी तरह वेदान्त की उपलब्धि, पूरी तरह से वेदान्त के साक्षात् अनुभव का अर्थ है कि आप उस अवस्था को प्राप्त हों, जिसमे सारा संसार आपके लिए स्वर्ग, एक उद्यान समान बन जाय, जिसमें सम्पूर्ण विश्व आपके लिए वैकुण्ठ बन जाय, ताकि जीवन सचमुच जीने के योग्य हो जाय—वे लोग वेदान्त का गलत वर्णन करते हैं जो कहते हैं कि वेदान्त हरेक मनुष्य को फ़कीर बनाना चाहता है। नहीं, नहीं। साधुओं का बाहरी भेष ग्रहण करना ऐसा है जैसे कोई विज्ञान-शास्त्र की परीक्षा पास करने के बाद अध्यापन का व्यवसाय करे।

इसके साथ हमें यह भी ज्ञात है कि इस वेदान्त का

प्रचार उन लोगों ने भी किया है, जो आजीवन सांसारिक कार्यों में लगे रहते थे। वेदान्त निराशावाद नहीं है। जो इस धर्म को निराशावाद बतलाते हैं वे ग़लत कहते हैं। वेदान्त और निराशावाद में बड़ा अन्तर है। वेदान्त तो आशावाद का सर्वोच्च शिखर है।

वेदान्त कहता है कि यदि तुम अपने शरीर को इस भव-सागर में छोड़ दो और तुम्हारे पास पतवार या डाँड़ पाल या बादवान, भाप या बिजली कुछ न हो तो अवश्य ही तुम्हारी जीवन नौका टूट फूटकर डूब जायगी। ऐसी स्थिति में आप अपनी नौका को पवन और तूफान की मर्ज़ी पर छोड़ देते हैं। वेदान्त कहता है कि संसार क्लेश और दुर्भाग्य से भरा हुआ है केवल अज्ञान के कारण। अज्ञान ही पाप है। अज्ञान ही तुम्हारे-सारे दुर्भाग्यों का कारण है। जब तक तुम अज्ञानी हो तभी तक तुम पीड़ित हो। वेदान्त कहता है—यदि तुम इस अज्ञान को हटा दो, यदि तुम पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर लो, यदि तुम सच्ची आत्मा को जान लो, तो संसार के कारागार तुम्हारे लिए स्वर्ग बन जायंगे। जीवन जीने योग्य बन जायगा, कभी परेशानी न होगी; कभी किसी बात से हैरानी न होगी, कभी चित्त अस्थिर न होगा, मन को कभी उद्विग्नता, उदासी, विषण्णता और मनोवेदना का सामना न करना पड़ेगा। कौन इसे नहीं चाहेगा? क्या यही यथार्थ सच्चाई नहीं है? वेदान्त निराशावाद नहीं है। वेदान्त घोषणा करता है--ऐ दुनिया के लोगो! तुम क्यों इस दुनिया को एकदम नरक बना रहे हो। ज्ञान प्राप्त करो, ज्ञान प्राप्त करो" यही वेदान्त की स्थिति है। वेदान्त में निराशा-वाद का नाम तक नहीं।

यहाँ आपको जानना चाहिए कि ऐसे वेदान्त का प्रचार दुनियादार लोगों ने किया है, उन लोगों ने किया है जिन्हें हम विरक्त किसी प्रकार नहीं कह सकते किन्तु ये लोग त्यागी अवश्य थे।

एक महान् भारतीय राजा अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को त्याग कर वन-गमन करनेवाला था। उसके गुरु ने, (इस शरीर के पूर्व पुरुष ने), उसे इसी वेदान्त की शिक्षा दी। फिर उसने वेदान्त के रहस्य से परिचित हो और सच्चा त्यागी बनकर एक शक्तिशाली सम्राट की भाँति जीवन-यापन किया।

वह बड़ा योद्धा, अर्जुन, जो कुरुक्षेत्र के महासमर का नायक था, अपने सांसारिक कर्म को छोड़ने ही वाला था। उसका कर्तव्य कहता था कि वह युद्ध करे. किन्तु वह उसे त्याग देना चाहता था, साथ ही उससे विमुख होकर साधू होने वाला था. कि इतने ही में कृष्ण उसके सामने उपस्थित हुए। उन्होंने अर्जुन को वेदान्त की शिक्षा दी, और ठीक तरह से समझे हुए इसी वेदान्त ने अर्जुन को साहस बंधाया, अर्जुन में तेज और बल का संचार किया, उसमें कर्मण्यता और जीवन-स्फूर्ति भर दी और लो, फिर वही अर्जुन एक शक्तिशाली सिंह की तरह गरजकर महासमर का अतिपराक्रमी नायक बन गया।

वेदान्त तुम्हें सशक्त और तेज बनाता है, न कि दुर्बल। वेदों में एक वचन है जो बतलाता है कि यह आत्मा, यह सत्य बलहीन मनुष्य के द्वारा कभी, कदापि नहीं प्राप्त किया जा सकती। आत्म-अनुभव दुर्बलों के लिए नहीं है। दुर्बल चित्त, दुर्बल शरीर, दुर्बल वृत्ति इसे कदापि नहीं प्राप्त कर सकते।

एक महाराजा अपना राज्य-पाट छोड़कर वन में चला

गया। वहाँ उसने सच्चा ज्ञान प्राप्त किया और सत्य का ज्ञान लाभ करने के बाद उसने फिर राजसिंहासन पर अधिकार किया। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर उसकी उपस्थिति से सिंहासन की शोभा द्विगुणित हो गई, और पहले वह शोभा कहाँ थी।

यदि त्याग से फकीरी अभिप्रेत नहीं है, तो फिर त्याग का क्या अर्थ है? यह एक उत्कृष्ट विषय है। राम इसे किसी दूसरे समय उठायगा।

यहाँ हिन्दू धर्म-ग्रन्थों का एक वचन है। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू मांस इसलिए नहीं खाते, कि वे ईश्वर को सब कहीं उपस्थित मानते हैं। हिन्दू मांस नहीं खाते, वेदान्ती मांस नहीं खाते, यह सत्य है, किन्तु कारण यह नहीं है। कारण कुछ और ही है। किन्तु अब इसकी आलोचना करने के लिए समय नहीं रहा।

कठ * उपनिषद् में एक वचन है।

"If he that slayeth thinks 'I slay'; if he
Whom he doth slay, thinks 'I am slain,' then both
Know not aright! That which was life in each
Cannot be slain, nor slay!"

"यदि वध करने वाला समझता है कि मैं वध करता हूँ,

---

* हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १६ ॥
कठ प्रथम अध्याय द्वितीय वल्ली

यदि वध होने वाला समझता है कि 'मेरा वध होता है,
तो दोनों,
ठीक नहीं जानते! वह जो दोनों में जीवन रूप है
न मार सकता है और न मारा जा सकता है!

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

माया

अथवा

दुनिया कब और क्यों ?

जनवरी १६०३ में, गोल्डेन गेट हाल, सैन फ्रांसिस्को में दिया हुआ एक व्याख्यान ।

❀ ॐ ❀

महिलाओं और सज्जनों के रूप में ऐ माया के शासक, नियामक और अधिनायक आत्मन् !

आज के व्याख्यान का विषय 'माया' है। यह एक ऐसा विषय है जिसे ऊपरी या मोटी दृष्टि वाले समालोचक वेदान्त दर्शन का सबसे अधिक निर्बल पहलू समझते हैं। आज हम इसी निर्बलतम पहलू को उठाते हैं। जिन विद्वानों और दार्शनिकों ने वेदान्त का अध्ययन किया है, वे सभी एकमत से कहते हैं कि यदि इस माया का युक्तिसंगत स्पष्टीकरण हो सके तो वेदान्त की और सब बातें मान्य होनी चाहिए। वेदान्त की अन्य हरेक बात अत्यन्त स्वाभाविक, स्पष्ट और स्वच्छ, हितकर और उपयोगी है। वेदान्त के विद्यार्थियों के रास्ते में यह 'माया' एक बड़ा अटकाव, एक बड़ा भारी रोड़ा है। यह एक बहुत बड़ा विषय है। इसकी पूर्ण विवेचना के लिए केवल इसी विषय पर कम से कम दस व्याख्यान होने चाहिए और तब कहीं यह विषय इतने स्पष्ट और सरल रूप में उपस्थित किया जा सकता है कि सूर्य तले या पृथ्वी पर एतद्विषयक कोई शंका, सन्देह, या प्रश्न बिना संतोषजनक

समाधान के न रह जायगा। प्रत्येक बात साफ़ समझाई जा सकती है, परन्तु उसके लिए समय चाहिए। जल्दबाज़ पाठकों और जल्दबाज़ श्रोताओं से आशा नहीं की जा सकती कि इसे पूरी तरह समझ लें।

प्रश्न है, 'यह दुनिया क्यों हुई, यह दुनिया कहाँ से हुई?' अथवा वेदान्त की भाषा में यों कह सकते हैं, 'विश्व में यह अविद्या क्यों?' आप जानते हैं कि वेदान्त की शिक्षा में यह विश्व 'मिथ्या' केवल देखने मात्र माना गया है। अविद्या नित्य नहीं है। ये सब दृश्य सत्य अथवा नित्य नहीं हैं। प्रश्न यह उठता है, "ऐसी अविद्या ही क्यों होनी चाहिए थी?" यह अविद्या जो इस दृश्य जगत् का मूल कारण है, अथवा यह माया जो इस सम्पूर्ण 'मैं और तुम' रूपी भेद, अनैक्य और पार्थक्य की जड़ है, यह अविद्या, यह माया शुद्ध स्वरूप आत्मा को क्यों वशीभूत कर लेती है? यह माया या अविद्या परमेश्वर से अधिक शक्तिशालिनी क्यों हो जाती है। यही मुख्य प्रश्न है।

साधारण बोल-चाल में, अन्य दार्शनिकों और धर्मवेत्ताओं की भाषा में प्रश्न है, "इस संसार का अस्तित्व ही क्यों हुआ?" "परमेश्वर ने इस संसार को क्यों रचा?" वेदान्त कहता है, "नहीं, भाई! तुम्हें ऐसा प्रश्न करने का कोई अधिकार नहीं। इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है।" वेदान्त साफ़ साफ़ कहता है कि इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। वह कहता है कि प्रयोगात्मक अनुभव से, प्रत्यक्ष साक्षात्-द्वारा सिद्ध करके हम तुम्हें दिखा सकते हैं कि यह संसार जो तुम देखते हो, वास्तव में परमेश्वर के सिवा कुछ नहीं है, प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा निर्विवाद रूप से हम तुम्हें दिखा

सकते हैं कि सत्य की साधना में जब तुम यथेष्ट ऊँचे चढ़ जाते हो तो यह दुनिया तुम्हारे लिए लोप हो जाती है। किन्तु इस दुनिया का अस्तित्व ही क्यों हुआ था? इस प्रश्न का उत्तर देने से हम विरत रहना चाहते हैं। यह प्रश्न उठाने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। वेदान्त स्पष्ट घोषणा करता है कि वह इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ है, और बस, यहीं पर अन्य धर्मवेत्ता, अन्य मतावलम्बी और सभी चर्मचक्षु वाले दार्शनिक आगे बढ़कर चिल्लाते हैं—"अरे, अरे, वेदान्त-दर्शन अपूर्ण, सर्वथा अपूर्ण है. वह संसार का 'क्यों' 'कहाँ से' नहीं बतला सकता। वेदान्त कहता है—"भाई, इस प्रश्न के, संसार आदि के कारण और आदि स्थान के विषय में जो उत्तर तुम स्वयं देते हो उनकी जाँच पड़ताल करो, खूब सावधानी से उनकी परीक्षा करो तो तुमको मालूम हो जायगा कि तुम्हारे उत्तर कोई उत्तर नहीं हैं। इस प्रश्न पर विचारे करना व्यर्थ है, समय को नष्ट करना है, एकदम समय और श्रम का अपव्यय है। यह काम ऐसा है जैसे भाड़ी की दो चिड़ियों की खोज में अपने हाथ की चिड़िया को छोड़ देना। झाड़ी की चिड़ियों तक पहुँचने के पहले वे उड़ जायँगी और अपने हाथ की चिड़िया अपने हाथ से खो दोगे। वह भी उड़ जायगी। वेदान्त कहता है कि दर्शन और विज्ञान मात्र की गति ज्ञात से अज्ञात की ओर होनी चाहिए। घोड़े के आगे गाड़ी को न रक्खो। अज्ञात से आरम्भ करके ज्ञात पर आने का क्या अर्थ होता है!

एक नदी बह रही थी। उसके तट पर खड़े हुए कुछ लोग उसके उद्गम के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा, "यह नदी शिलाओं, चट्टानों, पहाड़ियों

से निकली है। पहाड़ियों से जल उमड़ कर सोता बनता है, और वही नदी का कारण बनता है।" दूसरे ने कहा, "अरे, भाई, यह असम्भव है। पत्थर इतने कठोर, इतने नीरस और इतने सुदृढ़ होते हैं और जल कितना सरस तथा कोमल है। भला, कड़े पत्थरों से ऐसा कोमल जल कैसे निकल सकता है? असंभव! असंभव! बुद्धि इस बात को नहीं मान सकती कि कड़े पत्थरों से कोमल पानी बाहर निकल सकता है। यदि पत्थर पानी देता हो तो मैं पत्थर का यह टुकड़ा उठा कर उसे निचोड़ता हूँ। देखो, इससे तो बिलकुल पानी नहीं बहता। अतः तुम्हारा यह कथन निराधार है कि नदी उन पहाड़ों से निकली है। मैं एक सुन्दर कल्पना तुम्हें बताता हूँ। कहीं कोई दीर्घकाय पहलवान होगा और उसी के पसीने से यह नदी बहती होगी। हम नित्य देखते हैं कि जब कोई मनुष्य पसीजता है, तो उसके शरीर से पानी बहने लगता है। यहाँ पानी बह रहा है। अवश्य ही यह किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर से निकला है जो जोर से पसीज रहा है। यह बात युक्तिसंगत मालूम होती है। हमारी बुद्धि इसे स्वीकार कर सकती है। यह बात कुछ यथार्थ सी जान पड़ती है, यही बिलकुल ठीक होगी।" तीसरे ने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा भी हो सकता है—कहीं कोई व्यक्ति खड़ा हुआ थूक रहा हो, और यह नदी उसी का थूक है।" इसी प्रकार चौथे और पाँचवें ने अपनी अपनी कल्पनायें उपस्थित कीं।

अब इन लोगों ने कहा, देखो, देखो, हम लोगों की ये कल्पनायें तो युक्तिसंगत मानी जा सकती हैं, क्योंकि पानी के मूल संबंधी ये युक्तियाँ व्यावहारिक हैं। प्रति दिन हम ऐसी घटनायें देखते हैं। यद्यपि नदी के मूल के संबंध में उनकी सारी

कल्पनायें बहुत ही मान्य, उत्तम और स्वीकार योग्य जान पड़ती हैं, किन्तु पत्थरों से जल बहने वाली युक्ति ही जिसे उस मनुष्य की साधारण बुद्धि कभी न मानेगी जिसने पत्थरों से जल उमड़ते कभी नहीं देखा है, जो कभी पहाड़ों पर नहीं गया है, वास्तव में सत्य है। अब इस युक्ति की परम सत्यता का आधार क्या है?' अनुभव, स्वयं परीक्षा, प्रत्यक्ष-अवलोकन।

इसी प्रकार, दुनिया के आदि स्रोत को इस संसार का 'क्यों और कहाँ' का, संसार की सरिता के मूल को, जीवन नदी के उद्गम को विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है। उस प्रकार की बुद्धि के लोगों के अनुसार, जिन्होंने नदी का मूल स्रोत थूक अथवा पसीना बताया था, संसार के आदि स्रोत की भी व्याख्या बहुत कुछ उसी प्रकार की होती है जैसी वे प्रतिदिन अपने चारों ओर देखते रहते हैं। वे कहते हैं, 'देखो, यह एक जूता बनानेवाला है जूता बिना किसी मनुष्य और उसकी इच्छा या नमूने के कदापि नहीं बन सकता। एक मनुष्य घड़ी बना रहा है। यदि वह मनुष्य घड़ी बनाने का इरादा और युक्ति न करे तो कैसे घड़ी बन सकती है। यह एक मकान है। किसी मनुष्य द्वारा नक्शा और ढाँचा तैयार किये बिना मकान नहीं बन सकता है। प्रतिदिन ये बातें वे देखते रहते हैं और तभी वे कहा करते हैं, "यह विशाल विश्व हमारे सामने है।" चमार, घड़ीसाज़, कारीगर सरीखा कोई विशेष प्रकार का व्यक्ति हुए बिना यह कैसे बन सकता था इसलिए दुनिया का बनानेवाला कोई न कोई होना ही चाहिए, वही इस संसार को बनाता है। इस प्रकार वे कल्पना करते हैं कि मेघों के

ऊपर एक साकार, सगुण परमेश्वर अवश्य होगा। उस बिचारे पर उन्हें दया भी नहीं आती कि कहीं उसे सर्दी न लग जाय। उनका कहना है कि किसी साकार परमेश्वर ने ही अवश्यमेव इस संसार की रचना की होगी।

उनका तर्क बहुत कुछ स्वीकार योग्य, यथार्थ सा, युक्ति-संगत मालूम होता है। वह उसी प्रकार का तर्क जान पड़ता है, जिस प्रकार उन लोगों ने तर्क किया था कि नदी किसी के पसीने से अथवा शरीर के किसी अन्य अंग से वह निकलती है अतः दुनिया भी उनकी दृष्टि में किसी व्यक्ति द्वारा ही निर्मित हुई होगी।

वेदान्त इस तरह की कोई कल्पना पेश नहीं करना चाहता। उसकी कोई आवश्यकता नहीं। वेदान्त कहता है निरीक्षण करो, प्रयोग करो और प्रत्यक्ष अनुभव से तुम देखोगे कि दुनिया जैसी दिखाई देती है वैसी नहीं है। सो क्यों ? वेदान्त कहता है, यहाँ तक तो मैं तुम्हें समझा सकता हूँ कि पानी उन पत्थरों से फूट कर निकल रहा है। पत्थरों से पानी कैसे और क्यों निकलता है, यह चाहे मैं तुम्हें न बता सकूँ, परन्तु मैं जानता हूँ कि पानी पत्थरों से फूट निकलता है। मेरे साथ उस स्थान तक चलो और तुम स्वयं पत्थरों से पानी उमड़ते हुए देखोगे। यदि मैं यह नहीं बता सकता कि पानी पत्थरों से क्यों और कैसे निकलता है तो मुझे दोष मत दो, क्योंकि वह तथ्य है, तुम स्वयं उसे देख सकते हो !

इसी भाँति वेदान्त कहता है, मैं चाहे तुम्हें बता सकूँ या न बता सकूँ कि यह माया या अविद्या क्यों आई, किन्तु माया का होना है एक तथ्य। वह क्यों आई, मैं तुम्हें शायद यह न बता सकूँ। पर यह एक तथ्य है, अनुभवसिद्ध तथ्य

है। वेदान्तिक ढंग एकदम वैज्ञानिक और प्रयोगात्मक है। वह कोई अनुमान नहीं स्थापित करता, कोई कल्पना (theory) नहीं पेश करता। वह संसार के आदिस्रोत को समझाने की योग्यता का दावा नहीं करता। क्योंकि वह समझ या बुद्धि के प्रदेश से परे की बात है। यह है वेदान्त का पक्ष! यही माया कहलाती है। दुनिया क्यों प्रकट होती है? वेदान्त कहता है, क्योंकि तुम उसे देखते हो। संसार क्यों प्रकट हुआ है? वेदान्त का सीधा साधा उत्तर है, चूँकि तुम उसे देखते हो। यदि तुम न देखो, तो दुनिया कहाँ है। तुम कैसे जानते हो कि दुनिया है? जब तुम उसे देखते हो और देखो न, तो दुनिया कहाँ है? आँखें बन्द कर लो, दुनिया का पाँचवाँ भाग समाप्त, दुनिया का वह अंश-जिसे तुम अपने नेत्रों द्वारा बोध करते हो न रह जायगा। कान बन्द करो, पाँचवाँ हिस्सा और गायब। नाक बन्द करो, एक पाँचवाँ हिस्सा और लुप्त। अपनी किसी इन्द्रिय से काम न लो तो कहीं कोई दुनिया न रह जायगी। दुनिया को तुम देखते हो, इसलिए तुम्हें ही समझना चाहिए कि दुनिया क्यों है। तुम ही उसे बनाते हो। तुम्हें स्वयं उत्तर देना चाहिए। तुम मुझसे क्यों प्रश्न करते हो। तुम ही दुनिया की रचना करते हो।

एक बच्चा था। उसने दर्पण में एक छोटे बच्चे की प्रतिमा, स्वयं अपनी प्रतिमा देखी। किसी ने बच्चे से कहा कि शीशे में एक बहुत ही सुन्दर, प्यारा छोटा बच्चा बैठा है, और जब उसने शीशे में देखा तो उसे एक प्यारा नन्हा लड़का दिखाई भी दिया। बच्चा यह नहीं जानता था कि यह तो स्वयं उसका प्रतिबिम्ब है। उसने प्रतिबिम्ब को शीशे के

अन्दर एक दूसरा अपरिचित लड़का समझा। बाद में बच्चे की माँ ने उसे समझाना चाहा कि शीशे के अन्दर का लड़का उसी का प्रतिबिम्ब मात्र है, असली लड़का नहीं है, तो बच्चे को विश्वास न हुआ। वह समझ ही नहीं सका कि दर्पण में वस्तुतः दूसरा बालक नहीं है। जब माता ने कहा, "इधर देखो, यह शीशा है, इसमें कोई लड़का नहीं है," तब बच्चे ने शीशे में झाँक कर कहा, "ऐ माँ, ऐ माँ, लड़का कैसे नहीं है,"। जब लड़का यह कह रहा था कि 'यह लड़का है' तब 'यह लड़का है' कहते ही तुरंत उसने अपना प्रतिबिम्ब शीशे में डाल दिया। माता ने फिर उसे समझाना चाहा कि शीशे में सच्चा लड़का नहीं है। लड़के ने फिर प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण माँगा। लड़का फिर दर्पण के पास गया और बोला, "यह देखो, यह लड़का बैठा है।" शीशे में कोई वस्तु है या नहीं—यह सिद्ध करते समय लड़का शीशे में अपना प्रतिबिम्ब डाल देता था।

ठीक इसी तरह जब तुम मुझसे कहते हो, "दुनिया क्यों हुई, दुनिया कहाँ से हुई, दुनिया कैसे हुई।" ज्योंही तुम दुनिया के आदि स्रोत और उत्पत्ति का कारण तथा देश-काल का अनुसन्धान करने लगते हो, उसी क्षण तुम अपने सामने दुनिया की सृष्टि कर लेते हो। भला, इस प्रकार कैसे तुम दुनिया का मूल और उत्पत्ति-स्थान जान सकते हो? हम कैसे उसका मूल कारण जान सकते हैं? हमें उससे परे का ज्ञान कैसे हो सकता है? हम उसका अतिक्रमण कैसे कर सकते हैं? यह बात और भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए, लौकिक और आध्यात्मिक दोनों पहलुओं से। कुछ लोग कहते हैं कि जगदीश्वर ने जगत् को रचा है और वह रचयिता कहाँ

अलग खड़ा हुआ है। यदि वे कोई घर देखते हैं तो वे सोचते हैं कि किसी ने उसे बनाया होगा। इसीलिए वे कहते हैं कि यह दुनिया भी किसी व्यक्ति के द्वारा रची गई होगी। अब प्रश्न यह है कि दुनिया की सृष्टि करने के लिए यह सृष्टि-कर्त्ता कहीं खड़ा अवश्य हुआ होगा। वह कहाँ खड़ा हुआ होगा? यदि वह कहीं खड़ा हुआ था, यदि उसके ठहरने के लिए कोई जगह थी, तो दुनिया उसकी सृष्टि से पहले ही से विद्यमान थी, क्योंकि ठहरने की जगह कहीं दुनिया में ही होना चाहिए। इस प्रकार मानो आप कहते हैं कि दुनिया दुनिया की रचना से पहले ही मौजूद थी। जब तुम इस प्रश्न पर विचार करने लगते हो कि दुनिया का प्रारम्भ कब हुआ, तब तुम दो कल्पनाओं को पृथक पृथक करना चाहते हो—'कब, कैसे और कहाँ से' की कल्पना को एक ओर, और दुनिया की कल्पना को दूसरी ओर। किन्तु क्या "क्या, कब और कहाँ से" ये शब्द, अथवा देश-काल वस्तु की कल्पनायें दुनिया का अंश नहीं हैं? है, अवश्य है। अब आप खूब ध्यान दीजिये, आप सम्पूर्ण विश्व का 'मूल', 'क्यों' और 'कहाँ-से' जानना चाहते हैं। काल, देश और कारण भी दुनिया में हैं, दुनिया से परे नहीं हैं, काल तुम्हारे संसार के बाहर नहीं है। ज्यों ही तुम यह कहना शुरू करते हो कि दुनिया कब शुरू हुई, उसी क्षण दुनिया एक ओर हो जाती है और 'कब' की कल्पना दूसरी ओर। मानो तुम दुनिया को दुनिया से पहले रख लेते हो। यह विषय बहुत ही सूक्ष्म और बहुत ही कठिन है। अब आप कृपया बहुत ध्यान देकर, अत्यन्त सावधानी से सुनें।

दुनिया प्रारम्भ हुई, कब से? इस कथन के द्वारा तुम

जगत् को जगत् ही से पृथक कर लेना चाहते हो। तुम 'कब' की कल्पना को जगत् से अलग करना चाहते हो, तुम जगत् को 'कब' और 'कैसे' से नापना चाहते हो। किन्तु तुम्हें जानना चाहिए कि 'कब' और 'क्यों' स्वयं जगत् हैं। तुम जगत् से ऊपर उठना, जगत् से परे जाना चाहते हो, तुम जगत् से बाहर कूदना चाहते हो और इस क्रिया के द्वारा स्वयं जगत् का निर्माण कर लेते हो।

एक बार एक इंस्पेक्टर एक स्कूल में आया और लड़कों से यह प्रश्न पूछा, "यदि खरिया का एक टुकड़ा हवा में छोड़ दिया जाय तो वह कब पृथ्वी पर गिरेगा?" एक लड़के ने उत्तर दिया, "इतने सैकिंड में।" "यदि पत्थर का एक टुकड़ा उतनी ही ऊँचाई से नीचे गिराया जाय तो वह कितनी देर में गिरेगा?" लड़के ने उत्तर दिया, "इतने समय में।" तब इंस्पेक्टर ने कहा, "यदि यह वस्तु गिरने दी जाय तो इसे कितनी देर लगेगी?" लड़के ने ठीक उत्तर दे दिया। फिर परीक्षक ने पहेली पूछी, "अच्छा, यदि पृथ्वी गिरे तो उसे गिरने में कितनी देर लगेगी?" लड़के चकराकर रह गये। एक तेज़ लड़के ने उत्तर दिया, "पहले मुझे यह बतलाये कि पृथ्वी गिरेगी कहाँ?"

इसी तरह हम यह तो पूछ सकते हैं कि यह दीपक कब जलाया गया था, यह घर कब बनाया गया था, फर्श कब बिछाया गया था,—इत्यादि। किन्तु जब हम यह प्रश्न करते हैं कि पृथ्वी की सृष्टि कब हुई थी, संसार की सृष्टि कब हुई थी, तब यह पहेली भी उसी तरह की है जैसे "पृथ्वी को गिरने में कितना समय लगेगा।" पर पृथ्वी कहाँ गिरेगी? वास्तव में "क्यों, कब और कहाँ से," ये स्वयं जगत् के

अंश हैं, और जब हम सम्पूर्ण संसार के संबंध में इस क्यों, कब, और कहाँ से की चर्चा करते हैं तब मानों एक चक्करदार पहेली बुझाते हैं, जो तर्क-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध है। क्या तुम अपने आपसे बाहर कूद सकते हो? नहा। इसी तरह 'क्यों, कब और कहाँ से' स्वयं जगत् के अंग होने के कारण, जगत् के भाग हैं। वे जगत् की, सम्पूर्ण विश्व की व्याख्या नहीं कर सकते। यही उत्तर है जो वेदान्त ऐसे प्रश्नों का देता है।

अब यही बात दूसरी तरह समझायी जायगी।

यहाँ एक मनुष्य सोया हुआ है। और स्वप्न में सभी प्रकार की वस्तुयें देख रहा है। वही स्वयं द्रष्टा और दृश्य है; एक ओर स्वप्न का द्रष्टा, अथवा यों कहो कि स्वप्न का आश्चर्य-चकित द्रष्टा और दूसरी ओर जंगल, नदियाँ, पहाड़, तथा अन्य वस्तुयें। स्वप्न में स्वप्न की वस्तुयें और स्वप्न का द्रष्टा साथ ही साथ आविर्भूत होते हैं, जैसा कि उस दिन बतलाया गया था। क्या स्वप्न का द्रष्टा, स्वप्न का यात्री बतला सकता है कि ये नदियाँ, पहाड़, झीलें तथा अन्य भूभाग कब, किस समय अस्तित्व में आये? जब तक तुम स्वप्न देखते रहते हो, तब तक क्या तुम कह सकते हो कि ये वस्तुयें कब आविर्भूत हुई थीं? नहीं, कदापि नहीं। जब तुम स्वप्न देखते हो, तब नदियाँ, घाटियाँ, पहाड़ और सुन्दर सुन्दर दृश्य तुम्हें नित्य जान पड़ते हैं, तुम्हें वे सब प्राकृतिक जान पड़ते हैं, मानों सदा से उनका अस्तित्व हो। स्वप्नदर्शी द्रष्टा की हैसियत से तुम कभी यह कल्पना नहीं करते कि तुमने कभी अपना स्वप्न शुरू किया था, तुम उसे सत्य समझते हो और वे सब घाटियाँ, नदियाँ, भूभाग नित्य प्रतीत

होते हैं। तुम कभी उनका मूल कारण नहीं जान सकते। जब तक तुम स्वप्न देखते रहोगे तब तक तुम स्वप्न का 'क्यों, कब और कहाँ से' कदापि नहीं जान सकते। जाग उठो और सारा खेल समाप्त, जागो और सब लोप हो जाता है।

इसी तरह इस दुनिया में तुम्हें सब प्रकार के पदार्थ दिखाई देते हैं। वे असली जान पड़ते हैं, उनका क्रम अनन्त प्रतीत होता है, जैसे कि स्वप्न में भी सब अनन्त मालूम होता था। तुम स्पष्टतः यह नहीं जान सकते कि स्वप्न कब शुरू हुआ था। क्या आप बतला सकते हैं कि काल-चक्र कब आरम्भ हुआ था ? बुद्धि व्यवस्था के इस आन्तरिक विरोध को कैन्ट ने भी दर्शाया है। काल कब शुरू हुआ था ? जब तुम कहते हो कि काल अमुक समय शुरू हुआ था, तब तुम काल को पहले ही स्थापित कर लेते हो। यह प्रश्न ही सम्भव नहीं। देश कहाँ से शुरू हुआ था ? यह प्रश्न भी असम्भव है। देश से बाहर जहाँ से देश शुरू हुआ हो, तुम एक ऐसे बिन्दु की कल्पना करना चाहते हो जहाँ से देश शुरू हुआ हो। किन्तु देश का प्रारंभ 'कहाँ' की कल्पना से और 'कहाँ' की कल्पना देश की कल्पना से घिरी हुई है। अतः प्रश्न असम्भव है। कार्य-कारण की शृंखला कहाँ से शुरू हुई ? यह प्रश्न असम्भव है। कार्य-कारण की शृंखला क्यों शुरू हुई ! यह प्रश्न भी असम्भव है। अरे यदि तुम कार्य कारण शृंखला का कोई प्रारम्भ मानते हो, तो तुम यह भी देखोगे कि 'क्यों' की कल्पना ही स्वयं कार्य कारण का संबंध है। वह तुमसे परे निकल जाती है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका कोई उत्तर नहीं। देश, काल, वस्तु अथवा कार्य-कारण का इधर या उधर कहीं कोई अन्त नहीं होता। शोपेनहार ने इसे सिद्ध किया

है। हर्बर्टस्पेंसर ने इसे सिद्ध किया है। प्रत्येक विचारवान् तुम्हें बतायेगा कि इनका कोई अन्त नहीं होता। स्वप्न में भी उस विशेष प्रकार के समय का जिसे तुम स्वप्न में बोध करते हो, कोई अन्त नहीं होता, चाहे अपने से पहले, चाहे अपने से पश्चात्। स्वप्न में भी उस श्रेणी विशेष के देश की, जिसे तुम स्वप्न में बोध करते हो, कोई सीमा नहीं होती। स्वप्न में उस विशेष श्रेणी की कार्य-कारण-परम्परा का भी कोई अन्त नहीं होता जिसे तुम स्वप्न में देखते हो।

जागृत अवस्था में भी ठीक ऐसा ही है। वे लोग जो प्रत्यक्ष प्रमाण से इस प्रश्न का उत्तर देने का यत्न करते हैं, राह में भटक जाते हैं और एक चक्र में तर्क करते करते अपने को हैरान परेशान करते हैं। तात्पर्य यह, प्रश्न के प्रत्यक्ष प्रमाणों पर आधारित उत्तर असम्भव हैं। स्वप्नदर्शी द्रष्टा जब जागता है, तब सारी समस्या स्वतः हल हो जाती है। और जागने पर स्वप्नदर्शी द्रष्टा कहता है; 'अरे, वह तो स्वप्न था, उसमें कहीं भी कोई सचाई नहीं थी।' इसी भाँति सत्य के साक्षात्कार में जागने पर, मुक्ति की वह पूर्ण अवस्था प्राप्त होने पर, वेदान्त जिसके द्वार सब के लिए खोलता है तुम देख सकोगे कि यह दुनिया एकदम तमाशा थी, केवल क्रीड़ावस्तु, कोरा भ्रम थी और कुछ नहीं।

माया का वही प्रश्न इस तरह भी किया जाता है:— "यदि मनुष्य परमेश्वर है, तो वह अपने असली स्वभाव को क्यों भूल जाता है?" वेदान्त का उत्तर है:—'तुममें जो असली परमेश्वर है वह अपने वास्तविक स्वरूप को कभी नहीं भूलता। तुममें जो वास्तविक परमेश्वर है, वह यदि अपने सच्चे स्वभाव को भूल गया होता, तो फिर निरन्तर

इस विश्व का शासन और नियन्त्रण कैसे करता। फिर भूला ही कौन है? कोई नहीं, कोई नहीं भूला है। ठीक स्वप्न की सी अवस्था है। स्वप्न में, जब तुम विभिन्न प्रकार के पदार्थ देखते हो, वास्तव में वह तुम नहीं होते जो उन पदार्थों को देखता है। वह स्वप्न का द्रष्टा है, जिसकी सृष्टि स्वप्न की अन्य वस्तुओं के साथ ही होती है, वह उन सब पदार्थों को विषय करता है, उन सब दृश्यों को देखता है, तथा उन कंदराओं, पहाड़ों और नदियों में रहता है। असली स्वरूप, आत्मा, सच्चा परमेश्वर कदापि कुछ नहीं भूला है। यह मिथ्याहंकार का ख्याल स्वयं माया की रचना है, या उसी प्रकार का भ्रम है जैसे अन्य पदार्थ। शुद्ध स्वरूप कुछ भी नहीं भूला है। जब तुम कहते हो, परमेश्वर आदमी के जामे में क्षुद्र अहंकारी आत्मा होकर, अपने को भूल क्यों गया, तब वेदान्त कहता है—तुम्हारे इस प्रश्न में वही भूल है जिसे तर्कशास्त्री एक ही चक्र में तर्क करने की भूल कहते हैं। अच्छा, यह प्रश्न तुम किससे कर रहे हो? यह प्रश्न तुम स्वप्नदर्शी द्रष्टा से कर रहे हो या जाग्रत द्रष्टा से? स्वप्नदर्शी द्रष्टा से तुम्हें यह प्रश्न नहीं करना चाहिए क्योंकि वह कुछ नहीं भूला है। वह तो स्वयं भी वैसी ही रची हुई वस्तु है जैसी कि दूसरे पदार्थ जिनको वह देखता है। और जाग्रत अवस्था के असली द्रष्टा से तुम प्रश्न कर नहीं सकते। प्रश्न कौन करेगा? तुम जानते हो कि स्वप्न में प्रश्न करने वाले को स्वयं स्वप्न में होना चाहिए, और जब स्वप्नदर्शी द्रष्टा ही जाता रहा, तब प्रश्न कौन किससे करेगा? प्रश्न करने और उत्तर देने का द्वैत-चक्र केवल तभी तक संभव है जब तक माया का स्वप्न चलता है। तुम केवल स्वप्नदर्शी द्रष्टा

से प्रश्न कर सकते हो और स्वप्नदर्शी द्रष्टा उसके लिए उत्तर-दायी नहीं है। स्वप्नदर्शी द्रष्टा को हटा दो, और फिर सम्पूर्ण दृश्य-संसार, सम्पूर्ण स्वप्न ही लोप हो जायगा। प्रश्न करने के लिए ही कोई कहीं न रह जायगा। कौन किससे प्रश्न करेगा ?

यह एक सुन्दर नौका का चित्र है, और यह उस नाविक का चित्र है जो नौका को नदी के आर-पार ले जाता है। मल्लाह बड़ा भला आदमी है, वह नाव का मालिक है, किन्तु केवल तभी तक, जब तक चित्र-स्थिति वास्तविक समझी जाती है। नौका का स्वामी उसी अर्थ में नौका का स्वामी है जिस अर्थ में नौका एक नौका है। वास्तव में न कहीं नौका है, और न कहीं नौका का स्वामी। दोनों ही मिथ्या हैं। किन्तु जब हम किसी बच्चे से कहते हैं, "इधर आओ, इधर आओ, देखो, यह नौका का स्वामी कैसा सुन्दर है", तब नौका का स्वामी और नौका दोनों एक ही तरह के होते हैं। नौका के स्वामी को स्वयं नाव से अधिक वास्तविक कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

इसी तरह वेदान्त के अनुसार, संसार का नियामक, शासक, स्वामी, परमेश्वर या परमेश्वर की कल्पना का सम्बन्ध इस संसार से वैसा ही है, जैसे कि उस चित्र में नाविक का सम्बन्ध नाव से है। जब तक नौका है, तभी तक मल्लाह भी है। जब तुम्हें नौका की अयथार्थता का अनुभव हो जाता है, तब मल्लाह भी लोप हो जाता है।

इसी प्रकार नियामक, शासक, रचयिता, निर्माता तभी तक तुम्हारे लिए सच्चा है, जब तक दुनिया तुमको सच्ची जान पड़ती है। दुनिया को मिट जाने दो, वह कल्पना भी

स्वतः चली जायगी। सृष्टिकर्त्ता की कल्पना में सृष्टि की "क्यों, कब, और कहाँ से" सब निहित है। दुनिया की "कब, क्यों, और कहाँ से," का प्रश्न इस दुनिया से उसी तरह सम्बन्धित है जिस प्रकार मल्लाह नौका से। वे दोनों एक सम्पूर्ण चित्र के भाग हैं। वे दोनों एक ही कोटि के हैं, दोनों ही भ्रम हैं। 'क्यों, कब, और कहाँ-से' का प्रश्न भी भ्रम है। कब, क्यों और कहाँ-से का यह प्रश्न इस दुनिया का सारथी, मल्लाह, या नेता है। जब तुम जागते हो और सत्य का अनुभव करते हो, तब सम्पूर्ण संसार तुम्हारे लिए पट पर चित्रित नौका के समान हो जाता है, और क्यों, कब, कहाँ-से का प्रश्न, जो सारथी या मल्लाह के समान था, लुप्त हो जाता है। वास्तव में परम सत्य में जो काल से परे है, देश से परे है, वस्तु से परे है, क्यों, कब और कहाँ-से का कोई चिह्न नहीं है। लोग कहते हैं कि संसार का कारण एक सगुण, साकार सृष्टिकर्त्ता है। वेदान्त कहता है, नहीं, न इति, यह नेति शब्द संस्कृत में प्रायः आता है, और अमेरिकनों ने इसे बिगाड़ कर 'नट', यह नहीं, बना लिया है। प्रश्न वास्तव में असम्भव, उत्तर के सर्वथा अयोग्य है।

एक दूसरा मनुष्य आकर राम से कहता है, "परमेश्वर स्वयं अपने आप पर मोहित हो गया और उसने यह संसार बनाया, उसने शीशमहल की तरह यह संसार बनाया, और अपने आपको ही इन सब रूपों में देखना चाहा, अतएव उसने यह संसार बनाया है।" वेदान्त कहता है, 'नेति' 'निट,' यह नहीं। तुम्हें ऐसा अनुमान करने का कोई अधिकार नहीं है।

एक और मनुष्य आकर कहता है—इस संसार की रचना

हुए इतने साल बीते। वेदान्त कहता है, 'नेति,' 'निट,' यह नहीं। 'नेति' का ठीक अर्थ है माया। 'मा' का अर्थ है नहीं और 'या' का अर्थ है यह, इस प्रकार माया का अर्थ है यह नहीं। प्रश्न ही ऐसा है जिसका तुम प्रतिपादन नहीं कर सकते। अब प्रश्न होता है, क्या संसार सत्य है? वेदान्त कहता है 'नेति,' 'माया' यह नहीं, 'निट'। तुम इसे सत्य नहीं कह सकते। क्यों नहीं? क्योंकि सत्यता का अर्थ है वह वस्तु जो नित्य है, जो कल, आज और सदा एक सी रहती है। वही सत्यता है। अब क्या संसार सदा बना रहता है? वह सदा नहीं बना रहता। इसलिए वह सत्यता की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता। प्रगाढ़ निद्रा, सुषुप्ति में वह गायब हो जाता है। आत्मसाक्षात्कार, पूर्णता अथवा मुक्ति की दशा में वह तिरोहित हो जाता है। इस प्रकार वह सदा विद्यमान नहीं रहता। फलतः उसे सत्य कहने का तुम्हें कोई हक़ नहीं। क्या संसार असत्य है? वेदान्त कहता है नेति, यह नहीं, माया, निट। यह बड़ी विचित्र बात है। संसार असत्य नहीं है। वेदान्त कहता है, "नहीं, यह असत्य भी नहीं है, क्योंकि असत्य का अर्थ है वह वस्तु जो वेदान्त के कथन के अनुसार कभी नहीं हो, जैसे मनुष्य के सींग। क्या मनुष्य के कभी गौ के समान सींग थे? कभी नहीं। इसलिए यह असत्य है, किन्तु संसार असत्य नहीं है क्योंकि इसी समय वह तुम्हें वर्त्तमान प्रतीत हो रहा है। वह तुम्हें विद्यमान जान पड़ता है, इसलिए तुम्हें उसे असत्य कहने का कोई अधिकार नहीं है। क्या संसार सत्य है? नेति, निट। क्या संसार अंशतः सत्य और अंशतः असत्य है? वेदान्त कहता है माया, नेति, निट।

यह भी नहीं। असत्य और सत्य एक साथ नहीं चल सकते। इन प्रश्नों के यही उत्तर वेदान्त का मायावाद है। इन प्रश्नों के ऐसे उत्तरों का दूसरा नाम मिथ्या है, यह शब्द तुम्हारे अंग्रेजी 'माइथालोजी' शब्द का सगोत्रिय है। इसका अर्थ है वह वस्तु जिसे हम न सत्य कह सकते हैं, असत्य कह सकते हैं और न जिसे हम सत्य तथा असत्य दोनों कह सकते हैं। ऐसी यह तुम्हारी दुनिया है।

नास्तिक कहते हैं कि परमेश्वर कहीं कोई नहीं है। वेदान्त कहता है, नेति, नेति, माया। वे गलती पर हैं, क्योंकि उनके पास ऐसा कहने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि परमेश्वर नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि एक साकार, सगुण परमेश्वर है। वेदान्त कहता है नेति नेति यह नहीं। ऐसी बात कहने का तुम्हें कोई हक नहीं है। वेदान्त कहता है—इस क्षेत्र में तुम्हें पैर नहीं रखना चाहिए, इस क्षेत्र में तुम्हारी बुद्धि काम नहीं दे सकती। संसार में ही तुम्हारी बुद्धि के लिए यथेष्ट काम है उसे वहीं काम करने दो। "सीज़र (सम्राट्) की जो चीज हो वह सीज़र को दो, और परमेश्वर का जो कुछ है वह परमेश्वर को दो।" तुम्हारी बुद्धि के लिए भौतिक लोक में ही, प्रत्यक्ष व्यावहारिक जगत् में ही यथेष्ट काम है आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करने के लिए तुम्हें केवल एक राह से आना होगा, केवल एक ही राह से और वह मार्ग है, अनुभव का। वह मार्ग है प्रेम का, भावना का, श्रद्धा का, वरन् ध्यान का। एक अद्भुत प्रकार का ज्ञान अद्भुत प्रकार का ब्रह्म भाव। यदि तुम इस क्षेत्र में ठीक मार्ग से प्रवेश करते हो, तो कोई प्रश्न न उठेगा, सब समस्यायें अपने आप

हल हो जायँगी। सामवेद के केन उपनिषद में एक वचन * है।

"मैं नहीं कह सकता कि मैं उसे जानता हूँ, मैं नहीं कह सकता कि मैं उसे नहीं जानता हूँ।

जानने और न जानने से वह परे है।"

ठीक यही बात आधुनिक विद्वान् कहते हैं। हर्बट स्पेंसर अपने फर्स्ट प्रिंसिपल्स (प्रथम सिद्धान्त के प्रथम भाग "दी अननोयेबिल" (अज्ञात) में उसी परिणाम पर पहुँचता है जिस पर वेदान्त पहुँचा है। उसने जो कुछ कहा है उसे तुम्हें पढ़कर सुनाने की जरूरत राम को नहीं मालूम होती है, किन्तु एक छोटा वचन पढ़ा जा सकता है।

"There must exist some principle which being the basis of Science cannot be established by Science. All reasoned out conclusions whatever must rest on some postulate. There must be a place where we meet the region of the Unknowable, where intellect ought not to venture, cannot venture to go."

"ऐसा कोई चीज (परम तत्व) होना ही चाहिए जो विज्ञानों का आधार होते हुए भी विज्ञान के द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता। तर्कसिद्ध सभी परिणामों के आश्रय के लिए कोई (निर्विवाद आधार) होना ही चाहिए। यह निर्विवाद आधार एक ऐसा प्रदेश है जो अज्ञात की सीमा को छूता है, जहाँ बुद्धि का प्रवेश नहीं होना चाहिए, जहाँ जाने का साहस बुद्धि कर ही नहीं सकती।"

---

* नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च। यो नस्तद वेद तद वेद नो न वेदेति वेद च ॥ २ ॥ (केन खण्ड २)

सभी तत्वज्ञानियों ने इस विषय में प्रायः ऐसा ही मन्तव्य प्रकट किया है। तनिक ध्यान दीजिये। लोग कितनी भूल करते हैं, जब वे परमेश्वर पर किसी प्रयोजन का आरोप करते हैं, जब वे कहते हैं कि परमेश्वर ने ऐसा अवश्य किया होगा। परमेश्वर में दया अवश्य होना चाहिए, परमेश्वर में प्रेम जरूर होना चाहिए, परमेश्वर में भलाई होना चाहिए, परमेश्वर में यह या वह गुण होना ही चाहिए। ऐसे लोग कितनी गलती करते हैं, क्योंकि किसी भी प्रकार का श्रेणी-विभाग करना ससीम बना देना है। तुम एक ही साँस में परमेश्वर को अनन्त और सान्त कहते हो। एक ओर तो तुम कहते हो कि ईश्वर अनन्त है और दूसरी ओर तुम कहते हो 'अरे! उसमें यह गुण है और उसमें वह गुण है।" जब तुम कहते हो, वह अच्छा है तो वह बुरा नहीं है, और वह परिमित हो जाता है। जहां कहीं बुराई होगी, वहां अच्छाई नहीं हो सकती। जब तुम कहते हो कि वह ब्रह्म है, तो वह जीव नहीं है, तुम उसे परिच्छिन्न कर देते हो। तब तुम एक ऐसे स्थान का निर्देश करते हो जहां वह नहीं है। वह तो सब कुछ है। पुनः जब तुम कहते हो कि परमेश्वर ने इस या उस उद्देश्य से संसार की रचना की होगी, तो तुम परमेश्वर को कोई ऐसा व्यक्ति बना देते हो जो तुम्हारे सामने आकर अपनी करतूतों का उसी तरह उत्तर दे सकता है जिस तरह कोई मनुष्य किसी मेजिस्ट्रेट के सामने अपने कृत्यों का विवरण देता है। इसी तरह जब तुम परमेश्वर को किसी बात के लिए उत्तरदायी ठहराते हो अथवा उस पर किसी अभिप्राय उद्देश्य या आदर्श का आरोप करते हो, तब असली तौर पर तुम अपने को तो मेजिस्ट्रेट या न्यायाधीश बनाते हो और

परमेश्वर को अपराधी जैसा--जिसने कि कुछ ऐसे काम किये हैं जिनका हिसाब देने के लिए वह तुम्हारे समक्ष हाजिर हुआ है। यों क्या तुम उसे परिमित नहीं करते। वेदान्त कहता है कि तुम्हें परमेश्वर को अपनी अदालत के सामने लाने का कोई हक नहीं है। यह प्रश्न छोड़ दो, यह वैधानिक, युक्तिसंगत नहीं है।

वेदान्त शब्द का अर्थ है 'किसी भी व्यक्ति की गुलामी न करना। मुसलमान शब्द मुहम्मद के नाम पर निर्भर है। जो कुछ मुहम्मद साहब ने किया या कहा है, उस पर हमें विश्वास करना चाहिए। ईसाईयत शब्द ईसा के नाम की गुलामी है। बौद्धमत एक विशेष नाम--बुद्ध भगवान् की गुलामी है। जोराअस्टर-धर्म (पारसियों का धर्म) एक विशेष नाम, जोराआस्टर की गुलामी है। वेदान्त शब्द किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तित्व की गुलामी नहीं है। वेदान्त का शब्दार्थ है ज्ञान का अन्त या लक्ष्य। वेदान्त शब्द का अर्थ है सत्य, और इस प्रकार इसमें साम्प्रदायिकता की गंध तक नहीं है। वह सार्वभौमिक है। आप इस नाम से अपरिचित हैं, इसलिए उससे विद्वेष न कीजिये। तुम उसे सत्य का नाम दे सकते हो जैसा कि हिन्दुओं ने उसे समझा और प्रचारित किया है। तुम जानते हो सत्य, उसका पता चाहे जहाँ लगा हो जर्मनी में या अमेरिका में, कहीं भी उसका अनुसन्धान हुआ हो, उसका परिणाम सदा एक ही होता है। कहीं भी मनुष्य सूर्य की ओर देखे वह उसे उज्ज्वल और प्रभापूर्ण दिखाई देगा। जो कोई अपने पक्षपात को दूर हटा देगा, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जायगा, वह वेदान्त के सिद्धान्तों से सहमत हुए बिना न रहेगा। ये तुम्हारे अपने सिद्धान्त बन

जायँगे, । ये तुम्हारे अपने तर्क और निष्कर्ष बन जायँगे यदि तुम राग-द्वेषों, अपने पूर्वार्जित धारणाओं और पूर्वार्जित अनुरक्तियों को त्याग कर, खुले दिल से, उदारता-पूर्वक उन पर विचार करो।

राम अब माया की समस्या को तुम्हें हिन्दुओं की उस पद्धति से समझायेगा जिस प्रकार उन्होंने उसे अपने प्राचीन धर्मग्रन्थों में दर्शाया और समझाया है। वे उसे व्यवहारतः उद्देशात्मक ढंग से समझते हैं। वे माया को अनिर्वचनीय कहते हैं। उसका परिमित अर्थ भ्रांति मात्र है, परन्तु व्याख्या रूप में माया उसे कहते हैं जिसका वर्णन नहीं हो सकता, जो न सत्य कही जा सकती है और न असत्य कही जा सकती है, तथा जो सत्य और असत्य का मिश्रण भी नहीं है। यह सम्पूर्ण संसार माया या भ्रांति है, और वह भ्रांति दो प्रकार की होती है। एक को हम बाह्य और दूसरी को आन्तरिक भ्रान्ति कह सकते हैं।

मान लो कि अंधेरे में तुम्हें एक सर्प दिखाई दिया। मारे डर के तुम्हारे प्राण निकल गये, तुम गिर पड़े और चोट खा गये। वह साँप क्या था? क्या साँप सच्चा साँप था? वेदान्त कहता है कि सर्प सच्चा नहीं था, क्योंकि बाद में जब तुम साँप के स्थान पर गये तब वहाँ साँप न था। तो क्या सर्प झूठा है? वेदान्त कहता है, नहीं, नहीं। तुम्हें सर्प को झूठा कहने का क्या अधिकार! यदि साँप झूठा होता तो तुम्हें चोट ही क्यों लगती। सर्प भ्रान्ति मात्र था, और भ्रांति न सत्य होती है, और न असत्य, क्योंकि असत्य का अर्थ है कोई ऐसी वस्तु जिसका अस्तित्व कभी प्रतीत ही न हुआ हो। तुम इन्द्रधनुष देखते हो। क्या इन्द्रधनुष सत्य है? इन्द्रधनुष

सत्य नहीं है, क्योंकि यदि हम उस स्थान पर पहुँचें तो हम उसे नहीं पायँगे, और यदि हम अपनी स्थिति बदल दें, तो इन्द्रधनुष की स्थिति भी बदली हुई पायँगे। क्या वह असत्य है? नहीं, नहीं, क्योंकि हमें उसका अस्तित्व प्रतीत होता है, उसका हम पर कुछ प्रभाव भी पड़ता है। फिर वह असत्य कैसा! वह एक भ्रान्ति है।

दर्पण में तुम अपनी तस्वीर देखते हो। क्या तुम्हारी यह तसवीर असत्य है? वेदान्त कहता है--नहीं, वह असत्य नहीं है, क्योंकि वह तुम पर एक असर पैदा करती है, वह तुम्हें दिखाई देती है। क्या वह सत्य है? नहीं, वह सत्य भी नहीं है। तुम उधर मुँह फेरो और वह गायब। यह भी एक भ्रान्ति है। अच्छा, भ्रान्ति दो प्रकार की बताई गई है, भीतरी और बाहरी। भीतरी भ्रान्ति वह है जैसे रस्सी में सर्प दिखाई पड़ना। आन्तरिक भ्रान्ति की एक विशेषता यह है कि जब तक भ्रान्त वस्तु रहती है, तब तक असली वस्तु नहीं दिखाई पड़ती, और जब असली वस्तु दिखाई पड़ती है, तब भ्रान्त वस्तु का लोप हो जाता है। दोनों साथ-साथ नहीं चल सकतीं। आन्तरिक भ्रान्ति में वास्तविकता और भ्रान्ति साथ साथ नहीं रह सकते। भ्रान्ति से दिखाई देनेवाले सर्प को, और उसके पीछे आधारभूत असली वस्तु रस्सी को हम एक साथ नहीं देख सकते। यदि सर्प है तो रस्सी नहीं है। और यदि रस्सी है तो साँप नहीं है। दो में से एक को मिटना ही होगा। दो में से एक की उपस्थिति ही संभव है।

किन्तु बाहरी भ्रान्ति में दोनों साथ-साथ चलते हैं, असलियत भी और भ्रान्ति भी। दोनों एक साथ रह सकते हैं, जैसे कि शीशे में। शीशे में अन्दर दिखाई देनेवाला प्रतिबिंब

असत्य है, जिसे वैज्ञानिकों की भाषा में, दृग्गोचर प्रतिबिम्ब कहते हैं, असत्य प्रतिमूर्ति है, भ्रान्ति है। चेहरा असली वस्तु है। यहाँ मुख और उसका प्रतिबिम्ब साथ साथ चलते हैं। भ्रान्ति से दिखाई देनेवाला प्रतिबिम्ब और असली वस्तु, मुख साथ साथ चलते हैं। यही बाहरी भ्रान्ति की विशेषता है। बाहरी भ्रान्ति के संबंध में एक बात और उल्लेखनीय है, इसमें एक माध्यम होता है, जैसे शीशा। यहाँ दर्पण माध्यम है, और दिखाई देने वाली भ्रान्त वस्तु प्रतिबिम्ब है, और वास्तविक वस्तु मुख है। इस प्रकार वास्तव में बाहरी भ्रान्ति में, तीन चीजें एक साथ चलती हैं; और भीतरी भ्रान्ति में एक ही वस्तु एक समय में उपस्थित रहती है।

"हन्ता, यदि समझे कभी मैं हन्या का मूल,
हन्त समझ ले. मृतक मैं साकर घातक शूल।
दोनों को ही है नहीं, सच्चा आत्मिक ज्ञान,
अजर अमर है आत्मा और अनन्त महान।
अक्षय जीवन स्रोत, नहीं आत्मा है मरता,
निर्विकार निर्लेप, नहीं आत्मा है हन्ता।"

वेदान्तियों के अनुभव और प्रयोग जो आपके सामने सम्पूर्ण विश्व की एकता सिद्ध करते हैं, आगे चलकर आपको बताये जायँगे। उनके प्रयोगों, अनुभवों धार्मिक विकास तथा सत्य के अनुभवों से सिद्ध होता है कि यह संसार भीतरी और बाहरी—दोनों प्रकारों की भ्रान्तियों से बना हुआ है। जब कोई व्यक्ति धार्मिक जीवन और अपने अन्दर परमात्मा का अनुभव करना शुरू करता है तब वह केवल बाहरी भ्रान्ति पर विजय प्राप्त करता है। पृथ्वीतल के अन्य धर्मों

ईसाईयत, मुसलमान, बौद्ध, पारसी आदि सभी धर्मों ने, वेदान्त के बिना ही बाहरी भ्रान्ति को जीतने में बड़ा काम किया है जहाँ तक वे बाहरी भ्रान्ति को जीतने में सहायक होते हैं, वहाँ तक वेदान्त कहता है, वे बहुत ठीक हैं। किन्तु वेदान्त एक पग और आगे बढ़ता है। वह आन्तरिक भ्रान्ति को भी जीतता है, जिसके सामने दूसरे धर्म प्रायः ठिठक कर पीछे रह जाते हैं और कहने लगते हैं कि वेदान्त हमारे विरुद्ध है। किन्तु नहीं, वह उनके विरुद्ध नहीं है। वह केवल उसी बात की पूर्ति करता है जिसे उन्होंने शुरू किया था। वह उनकी पूर्णता में सहायक होता है। वह उनका प्रतिद्वंद्वी नहीं है, वह उनका विरोधी नहीं है। किन्तु आप कहेंगे कि यह तो हमसे संस्कृत में बोलना है, ऐसी भाषा में बोलना है जिसे हम समझते नहीं। इन बातों से आपका प्रयोजन क्या है?

अब राम एक अत्यन्त सूक्ष्म बात कहने वाला है। इसलिए बड़ी सावधानी से ध्यान दीजिये। रस्सी भ्रमवश साँप या भुजंग समझ ली जाती है। रस्सी में साँप प्रकट हो जाता है। किस प्रकार की भ्रान्ति के कारण सर्प का उदय हुआ? सर्प उपर्युक्त भीतरी या आन्तरिक भ्रान्ति के कारण पैदा हुआ। आप जानते हैं कि यदि साँप है, तो रस्सी वहाँ नहीं हो सकती, यदि रस्सी है तो साँप नहीं हो सकता। एक समय में केवल एक ही चीज़ दिखाई पड़ती है। यह भीतरी भ्रान्ति कहलाता है, खूब समझिये। यह सर्प या भुजंग जो हमारे सामने प्रकट हुआ एक भ्रान्तिमूलक पदार्थ है जिसका अस्तित्व आन्तरिक भ्रान्ति के कारण प्रतीत होता है। यह साँप अपने आधारभूत रस्सी के लिए वही काम देता है जो

शीशा उस समय करता है, जब कि हम उसमें देखते हैं। यह तुम्हारे सामने अभी सिद्ध करना है। तुम जानते हो कि शीशा तुम्हारे लिए एक माध्यम का काम करता है। शीशे के माध्यम से, तुम शीशे में एक भ्रान्तिमूलक पदार्थ—अथवा यों कहिए कि एक प्रतिबिम्ब देखते हो। शीशे में प्रतिबिम्बित चित्र के विषय में पहले बताया जा चुका है कि वह बाहरी भ्रान्ति के कारण होता है। अब आपको यह बतलाया जायगा कि रस्सी में साँप आन्तरिक भ्रान्ति के कारण प्रकट होता है। यह साँप अपनी आधारभूत वास्तविकता अर्थात् रस्सी को प्रकट करने के लिए माध्यम अथवा शीशे का काम देगा, और भीतरी भ्रान्ति के इसी स्थल पर हमें बाहरी भ्रान्ति का उदाहरण मिल जायगा।

तुम्हारा लड़का तुम्हारे पास आकर कहता है, "पिताजी, पिताजी, मुझे डर लगता है, वहाँ साँप है।" तुम पूछते हो "बच्चे! साँप कितना लम्बा है?" लड़का कहता है "साँप लगभग दो गज लम्बा होगा।" अच्छा, साँप मोटा कितना है? बच्चा कहता है, "बहुत मोटा है। वह उस तार जितना मोटा है जो मैंने कल उस जहाज पर देखा था जो सनफ्रांसिस्को से जाने वाला था"। तुम फिर पूछते हो "अच्छा, साँप क्या कर रहा है? वह कहता है "साँप ने गेंडरी मार रखी है"। तुम जानते हो कि साँप वहाँ वास्तव में नहीं है। साँप मिथ्या है, एक रस्सी वहाँ पड़ी हुई है। रस्सी करीब दो गज लम्बी है, और उतनी ही मोटी जितना कि वह तार जो उसने सनफ्रांसिस्को से रवाना होने वाले जहाज पर देखा था। रस्सी धरती में लिपटी पड़ी हुई थी, अब वहाँ मानो रस्सी के गुणों ने—उसकी मोटाई, लम्बाई, और

स्थिति आदि ने अपने आपको उस भ्रान्तिमूलक साँप में प्रतिबिम्बित कर दिया है। रस्सी अपनी मोटाई, अपनी लम्बाई, अपनी स्थिति उस भ्रान्तिमूलक साँप में आरोपित कर देती है। साँप उतना लम्बा नहीं था, वह लम्बाई तो सिर्फ रस्सी की थी। साँप उतना मोटा नहीं था, वह मोटाई तो केवल रस्सी की थी। साँप उस स्थिति में नहीं था, वह स्थिति तो केवल रस्सी की थी। अतः आप खूब ध्यान दें कि प्रारम्भ में भीतरी भ्रान्ति के कारण हमें साँप दिखाई दिया, और बाद में सर्प में हमने दूसरी भ्रान्ति की सृष्टि की, जिसे हम बाहरी भ्रान्ति कह सकते हैं। क्योंकि यहाँ एक के गुणों का आरोप दूसरे पर होता है।

यह दूसरे प्रकार की भ्रान्ति है। अब इन भ्रान्तियों को हटाने के लिए कौन सा साधन अँगीकार किया जाय? हम पहले एक भ्रान्ति को हटायेंगे, और फिर दूसरी को। पहले, बाहरी भ्रान्ति हटाई जायगी, और तब भीतरी भ्रान्ति।

वेदान्त के अनुसार, यह सम्पूर्ण विश्व वास्तव में केवल एक अखण्ड अनिर्वचनीय (सत्ता) के सिवा और कुछ भी नहीं है, जिसे हम सत्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि वह वाणी से परे है, देश काल-वस्तु से परे है, सबसे परे है। वास्तविक सत्ता की इस रस्सी में, इस अन्तःस्थित आधार में, तत्त्व में, अथवा चाहे जो नाम तुम इसे दो, उसमें नाम, रूप, और भेद-भावों का प्रादुर्भाव होता है, तुम इस प्रादुर्भाव को जीवन-शक्ति, क्रियाशीलता, स्फुरण आदि कोई नाम दे सकते हो। ये सब नाम-रूप सर्प के तुल्य हैं। इससे आगे हम देखते हैं कि इस भीतरी भ्रान्ति के पूर्ण होने पर बाहरी भ्रान्ति का उदय होता है, और इस बाहरी भ्रान्ति

के कारण हम इन नाम और रूपों, इन व्यक्तियों और प्राणियों में स्वयं एक वास्तविकता का विद्यमान होना मानने लगते हैं, मानों ये सब नामरूपादि स्वतः स्थित हों, अपनी स्थिति के लिए परमुखापेक्षी न हों, वरन् स्वयं अपने बल पर ही स्थिर और जीवित हों—यही दूसरी या बाहरी भ्रान्ति का आविर्भाव है। अब हम (इन भ्रान्तियों के निवारणार्थ) इस क्रम को उलटेंगे, तब यह बात और भी ठीक समझ में आयगी।

हमारे धर्मों ने हमारे लिए क्या किया है? ओह प्यारी ईसाईयत, मुसलमानियत, तुम्हें हमारा इतना धन्यवाद है, संसार के सभी धर्मों को हमारा इतना धन्यवाद है कि उन्होंने बाहरी भ्रान्ति को दूर करने में हाथ बटाया है। इन्होंने मानवजाति को दिखला दिया है कि यदि हम शुद्ध जीवन निर्वाह करें; यदि हमारा जीवन सार्वभौम प्रेम, दैवी आनन्द का जीवन हो, यदि मनुष्य आशा, श्रद्धा, और उदारता का जीवन व्यतीत करे, यदि वह असीम प्रेम चारों ओर फैलाकर समस्त विश्व को परमेश्वर-भाव से प्लावित कर दे; तो हमें हरेक वस्तु में परमेश्वर के दर्शन होने लगें। ज़रा ध्यान दीजिये। सच्चा साधु या सन्त, सच्चा ईसाई, प्यारा ईसाई, नामों में भी परमेश्वर को देखता है। वह शत्रु से घृणा नहीं करता, वह शत्रु को प्यार करता है।

"भाइयो! अपने शत्रु को आत्मवत् प्यार करो।" ईसा की इस शिक्षा को धन्य है! फूलों में भी उन्हें उसी परमेश्वर के दर्शन होते हैं। कभी तुमने भी इस अवस्था का अनुभव किया है? सच्चे धार्मिक लोगों ने ऐसा अनुभव किया है। फूल तुमसे बोलते हैं, और पत्थर तुम्हें धर्मोपदेश देते हैं, बहते हुए नदी-नालों में तुम्हें पुस्तकों की शिक्षा मिलती है, तारा-

द्वारा तुमसे वार्तालाप करते हैं, और परमेश्वर हर एक मनुष्य के चेहरे के द्वारा तुम्हें अवलोकन करता है। क्या परमेश्वर को किसी बौद्धिक प्रमाण की जरूरत है? नहीं, वह स्वयं अपना प्रमाण है। वह उस प्रमाण पर स्थित है, जो सम्पूर्ण लौकिक तर्कशास्त्रों और लौकिक तत्त्वज्ञानों से परे है। जो व्यक्ति सर्वत्र परमेश्वर का अनुभव करता है, जो परमेश्वर में ही रहता सहता, चलता-फिरता और परमेश्वर में ही अपनी सत्ता रखता है, वह स्वयं परमेश्वर है। इस प्रकार के धार्मिक जीवन, अभ्यास और अनुभव तथा प्रयोगों द्वारा, साधक बाहरी भ्रान्ति को जीत लेता है। यह कैसे? तुम जानते हो, तुम्हारा कहना है कि परमेश्वर ही इन सब नाम-रूपों में है, परमेश्वर इन सब अवस्थाओं, आकारों और भेद-भावों में विद्यमान है। ये सब साँप के समान आरोपित पदार्थ हैं। यदि तुम उनके पीछे, नीचे देखोगे तो उनके आधार में तुम्हें साँप के नीचे, अधोस्थित रस्सी के समान 'परम तत्व' दिखाई पड़ेगा। लम्बाई-चौड़ाई और गोलाई का आरोप तुम सर्प पर नहीं करते हो, वरन् अधोस्थित रस्सी पर करते हो। यहाँ पर तुम केवल एक प्रकार की भ्रान्ति को हटाते हो। तुम हरेक वस्तु के पीछे परमेश्वर को देखते हो, और जब तुम धार्मिक जीवन की इस अवस्था में पहुँचते हो, तब तुम अपने मित्रों या शत्रुओं पर कारणों या प्रयोजनों का आरोप नहीं करते, तुम उन सबमें परमेश्वर को देखते हो, तुम हर एक बात में परमेश्वर को, जगन्नियन्ता के संकेत को देखते हो, और कहते हो कि एक ही परमेश्वर, एक ही सर्वात्मा, जो परमेश्वर रूप है, सारे काम कर रहा है। मुझे अपने मित्रों या शत्रुओं पर स्वार्थपूर्ण

अभिलाषाओं का आरोप न करना चाहिए। इस प्रकार हम भ्रान्ति, बाहरी भ्रान्ति को जीत लेते हैं। यह तुम्हारी उन्नति की पहली सीढ़ी है। "भाई, यदि तुम केवल इतना मानते हो कि परमेश्वर इन सारी वस्तुओं में है, तो यह पूर्ण सत्य नहीं है, इससे और आगे बढ़ो।" इन सब नाम-रूपों में और इन समस्त प्रतिमाओं में इन भेदों और प्रभेदों में स्वयं परमेश्वर समाया हुआ है किन्तु इसके साथ ही यह भी ध्यान रखिये कि ये सब विभिन्न नाम और रूप और प्रतिमायें मिथ्या हैं, जैसे रस्सी में साँप मिथ्या होता है। इस भ्रान्ति से आगे बढ़ो, और तुम उस अवस्था को प्राप्त होगे, जो इन सबसे परे है, जो सम्पूर्ण कल्पना से परे है, और सम्पूर्ण शब्दों से परे है। वह बाह्य और आन्तरिक दोनों भ्रान्तियों से परे है। बस, इस प्रकार तुम देख सकते हो कि वेदान्त सब धर्मों की पूर्ति करता है। वह संसार के किसी धर्म का खण्डन नहीं करता।

अब यह दिखाया जायगा कि "यह संसार इस परमेश्वर ने, या उस परमेश्वर ने, अवश्य ही रचा होगा" ऐसा कहना क्यों अनावश्यक है। यह सिद्ध किया जायगा कि ये नाम-रूप ये विभिन्न आकृतियां और स्थितियाँ ही सारी दुनिया है, इससे इतर यह कुछ नहीं है। देखिये—

ये दो त्रिभुज हैं, और एक आयत। ये दोनों त्रिभुज समद्विभुज हैं, इनकी दो भुजायें बराबर हैं। दोनों समान भुजायें अंक ३ से चिह्नित हैं, और तीसरी भुजायें ४ से। आयत में छोटे पार्श्व ३ से चिह्नित हैं और लम्बे पार्श्व ४ से। ये आकृतियाँ कागज, दफ्ती या किसी ऐसी ही वस्तु से काटी गई हैं। इनको इस प्रकार रखो कि एक संयुक्त आकृति हो

जाय, यानी त्रिभुजों का आधार आयत के लम्बे पार्श्व से
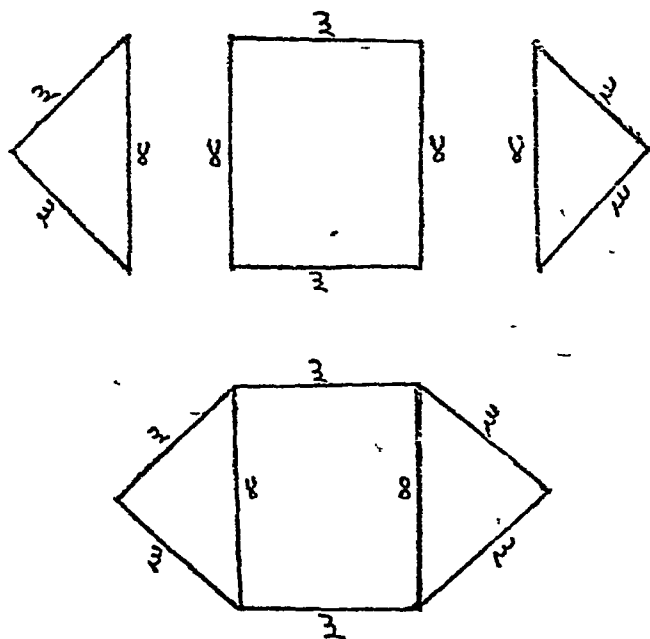
जुड़ जाय । अब यह कौन सी आकृति हुई ? यह एक षट्भुज क्षेत्र बन गया जिसकी हर एक भुजा ३ से चिह्नित है। ४ अंकित पार्श्व आकृति के भीतर आ गये और अब वे नये क्षेत्र में पार्श्व के स्थान में नहीं हैं। यह षट्भुज क्षेत्र कैसे बना ? यह क्षेत्र उन और त्रिभुजों और आयत की एक भिन्न स्थिति अथवा भिन्न प्रकार के सम्मेलन से बना है। अब इन आकृतियों और इनसे बनने वाली नवीन आकृति के गुणों को ध्यान से देखिये ! परिणामभूत नवीन आकृति के गुण उसमें सम्मिलित आकृतियों के गुणों से बिलकुल भिन्न हैं। अंगभूत आकृतियों में न्यून कोण हैं, परिणामभूत नवीन

आकृति में न्यून कोण बिलकुल नहीं है। एक अंगभूत आकृति (आयत) में समकोण हैं, और परिणामभूत नवीन आकृति में एक भी समकोण नहीं है।

अंगभूत आकृतियों में ४ से चिह्नित लम्बे पार्श्व थे; परिणामभूत नवीन आकृति में उतनी लम्बाई का कोई पार्श्व नहीं है। अंगभूत आकृतियों में से कोई भी समभुज नहीं थी। उनके संयोग से बनने वाली नवीन आकृति समभुज है और उसके सब कोण बराबर हैं, यद्यपि किसी भी अंगभूत आकृति के कोण बराबर नहीं थे। तात्पर्य यह, यहां हम एक ऐसी सृष्टि देख रहे हैं, जिसके सब गुण पहले बिलकुल अज्ञात थे। ये बिलकुल नये गुण कहाँ से आ गये? तनिक ध्यान दीजिये। क्या इन एकदम नये गुणों की सृष्टि किसी सृष्टिकर्त्ता ने की है? नहीं। क्या ये बिलकुल नये गुण अंगभूत क्षेत्रों के परिणाम हैं? नहीं, उनके भी नहीं। वे तो उस नवीन रूप का परिणाम हैं, वे तो उस नवीन स्थिति, नवीन आकार का परिणाम हैं, जिसे वेदान्त में माया कहते हैं। माया का अर्थ है नाम और रूप। ये गुण नाम और रूप का परिणाम हैं, यह बात खूब समझ लीजिये।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए। इन दोनों त्रिभुजों में से हर एक को एच यानी हाईड्रोजन गैस मानो और आयत को ओ यानी ओक्सीजन गैस मानो। तुम जानते हो कि हाइड्रोजन के दो अंश साथ एक अंश-ओक्सीजन मिलाने से जल की प्राप्ति होती है। इन दो मूल तत्वों, हाइड्रोजन और ओक्सीजन गैसों में अपने अपने निजी गुण हैं किन्तु परिणामभूत चीज़ एकदम नवीन वस्तु है। हाइड्रोजन और और ओक्सीजन के संयोग से हमें जल मिलता है। देखो,

हाइड्रोजन भभक उठने वाला पदार्थ है, वह जल ऐसा नहीं है। जल में एक ऐसा गुण है जिसका हाइड्रोजेन में पूर्ण अभाव है। ओक्सीजन ज्वलन का सहायक है, किन्तु पानी ऐसी सहायता नहीं कर सकता। उसमें अपना एक निजी गुण है, बिलकुल नया। फिर हम देखते हैं कि हाइड्रोजन बहुत हलका है, किन्तु जल में वैसा हलकापन नहीं है। हाइड्रोजन गुब्बारों में भरा जाता है और हमें ऊपर आकाश में चढ़ा ले जाता है; किन्तु उनका परिणामभूत योग, जल ऐसा नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि अवयवरूप तत्वों के गुण परिणामभूत योग से बिलकुल पृथक होते हैं। परिणामभूत योग को अपने इन गुणों की प्राप्ति कहाँ से हुई? उसको ये गुण अपने रचयिता से मिले अथवा अवयवों से? नहीं, ये गुण तो नये रूप से, नवीन स्थिति से, नवीन आकार से आये। यही बात वेदान्त हमें बतलाता है। वेदान्त तुम्हें बताता है कि जो कुछ तुम इस संसार में देखते हो, वह केवल नाम और रूप का परिणाम है। तुमको इस गुण अथवा उस गुण के लिए किसी सृष्टिकर्त्ता को मानने की जरूरत नहीं, क्योंकि वे नाम और रूप का परिणाम हैं।

तुम्हारे सामने यह तो कोयले का एक टुकड़ा है और वह एक चमकीला, अत्यन्त चमकीला हीरा है। अब कोयले के टुकड़े के गुण और हैं और हीरे के बिलकुल और। हीरा इतना कठोर है कि लोहे को काट सकता है। कोयला इतना कोमल है कि कागज़ पर रगड़ने से कागज़ के टुकड़े पर ही उसका निशान बन जाता है। हीरा इतना अमूल्य, इतना बहुमूल्य और प्रभापूर्ण है; और कोयले का टुकड़ा कितना सस्ता, कुरुप, और काला है। दोनों के भेद पर ही ध्यान दीजिए

तथापि वास्तव में वे दोनों एक, एक वही वस्तु हैं। विज्ञान से यह बात सिद्ध है। "अजी" आप कहेंगे, "यह बात बुद्धि में नहीं समा सकती।" आप चाहे इसे मानें या न मानें--पर यह एक तथ्य है। बस, इसी तरह वेदान्त आप से कहता है कि यह एक बुरी वस्तु है, और यह एक अच्छी वस्तु है। हीरा अच्छा है और कोयला खराब है। यह एक वस्तु है जिसे तुम खराब कहते हो, और वह एक वस्तु है जिसे तुम अच्छा कहते हो। यह एक वस्तु है जिसे तुम मित्र कहते हो और यह एक वस्तु है जिसे तुम शत्रु समझते हो। किन्तु वास्तव में उनके नीचे एकदम एक, एक ही वस्तु स्थित है, ठीक ऐसे जैसे कि कार्बन ही कोयले के रूप में प्रकट होता है और वही कार्बन हीरे में। जो वास्तव में एक और एक ही ईश्वर है, जो दोनों स्थानों में प्रकट होता है। नाम और रूप में भेद है, और किसी बात में नहीं। वैज्ञानिक तुम्हें बतलायेंगे कि कार्बन के कण कोयले में जिस प्रकार से स्थित होते हैं, उससे एक भिन्न प्रकार से वे हीरे में, हीरे के अणुओं में विद्यमान रहते हैं। हीरे और कोयले में भेद नाम और रूप के कारण से है, इसी को हिन्दू माया कहते हैं। ये सारे भेद-भाव नाम और रूप के कारण हैं।

इसी तरह अच्छे और बुरे के भेद का कारण भी माया, नाम और रूप है, और कुछ नहीं; और ये नाम और रूप सत्य नहीं हैं क्योंकि अनित्य हैं। वे मिथ्या इसलिए हैं कि वे एक समय तो दिखाई देते हैं और दूसरे समय नहीं दिखाई देते। यह दृश्य जगत् नाम और रूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है; नाम-रूप के विभेदों, परिवर्तनों और संयोगों के सिवा कुछ नहीं है। अब इन विभिन्न परिवर्तनों तथा संयोगों का

कारण क्या है ? उनका कारण है आन्तरिक भ्रान्ति । आन्तरिक भ्रान्ति से उत्पन्न इन नाम-रूपों में एक ही ब्रह्म अपने को प्रकट कर रहा है । संसार के नामों और रूपों में, जो माया मात्र हैं, परमेश्वर स्वयं आविर्भूत होता है। इसका कारण है भीतरी भ्रान्ति। इससे ऊपर उठो और तुम सब कुछ हो । वास्तव में देखता वही है जो सबमें एक जैसा देखता है । उसी मनुष्य की आँखें खुली हुई हैं जो सबमें एक, एक समान, एक परमेश्वर को देखता है ।

गीता के कुछ श्लोक इस भाव को और स्पष्ट करते हैं—

"I am the Sacrifice ! I am the Prayer !
I am of all this boundless Universe
The Father, Mother, Ancestor and God !
The end of Learning ! That which purifies
In lustral water ! I am Om ! I am
Rig, Sama and Yajur. I am
The way, The Fosterer, the Lord, the Judge,
The Witness; the Abode, the Refuge-house,

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक साम यजुरेव च ॥
गतिर्भर्ता, प्रभु साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥

The friend, the Fountain and the Sea of Life,
Which sends, and swallows up seed and seed-sower,
Whence endless harvests spring ! Sun's heat is mine,
Heaven's rain is mine to grant or to withhold,
Death am I and Jmmortal Life I am !"

"मैं यज्ञ हूँ; मैं हूँ प्रार्थना !
इस असीम विश्व का मैं हूं
जनक, जननी, पूर्ण पुरुष और परमेश्वर,
ज्ञान की पराकाष्ठा हूँ मैं. वह जो।
शुचिकर जल में है ! पवित्रकारी ॐ वह ॐ मैं हूँ।
मैं ऋक्, साम और यजुर हूँ।
मैं हूँ मार्ग, प्रतिपालक, प्रभु, न्यायाधीश,
साक्षी, निवासस्थान, शरण-निकेत मैं,
मित्र, जीवन का मूल स्रोत और समुद्र,
जो बीज और बीज-बोनेवाले को भेजता और जाता है निगल।
जहाँ से अनन्त फसलें पैदा होती हैं ! सूर्य का ताप भी मेरा,
आकाश की वर्षा मेरी है, चाहे दूँ या रोकूँ;
मृत्यु मैं हूँ, और अमर जीवन मैं ही !"

The melodious song of the Ganges,
the music of the waving pine,
The echoes of the Ocean's war,
the lowing of the kine,

The liquid drops of dew,
The heavy lowering cloud,
The patter of the tiny feet,
The laughter of the crowd,
The golden beam of the Sun,
The twinkle of the silent star,
The shimmering light of the silvery moon
shedding lustre near and far
The flash of the flaming sword,
the sparkle of jewels bright,
The gleam of the light-house-beacon light
in the dark and foggy night,
The apple-bosomed Earth
and Heaven's glorious wealth,
The Soundless sound, the flameless light,
The darkless dark, the wingless flight,
The mindless thought, the eyeless sight,
The mouthless talk, the handless grasp
so tight,

Am I, am I, am I.

गंगा का मधुर गान,
लहराते हुए देवदारु का संगीत,
सागर - समर की प्रतिध्वनियाँ,
गायों का रंभाना,
ओस के तरल बूँद,
भारी अधोगामी मेघ,

नन्हे नन्हे पैरों की पटक,
समूहों की हास्यध्वनि,
सूर्य की सुनहली किरण,
मौन नक्षत्रों की चमक,
रुपहले चन्द्र का काँपता हुआ प्रकाश।
निकट और दूर जिनका उजियाला है।
लपलपाती तलवार की दमक,
चमकीले रत्नों की छटा,
अँधेरी और कोहरेभरी रात में,
प्रकाश-गृह के मार्ग-प्रदर्शक ज्योति
गर्भ में सेव धारण करने वाली भूमि
और वैकुण्ठ की उज्ज्वल धन-सम्पत्ति।
निश्शब्द शब्द, लौ-हीन प्रकाश,
अन्धकार रहित अन्धकार, और
पंखहीन उड़ान,
मनहीन विचार, नेत्रहीन दृष्टि,
मुखहीन बातचीत, हस्तहीन पकड़
अति दृढ़, अति दृढ़
हूँ, मैं मैं ही, मैं ही।

संसार का प्रारम्भ कब हुआ ?

बुधवार, ६ अप्रैल १६०४ का भाषण।

महिलाओं और सज्जनों के रूप में प्यारे आत्मन्!

यह पूछा जाता है, दुनिया कब शुरू हुई थी? 'कब' का अर्थ है किस समय पर। अतः प्रश्न बनता है—किस समय पर दुनिया प्रारम्भ हुई थी? जब कि समय स्वयं दुनिया का एक अंग, अंश मात्र है, तब वही प्रश्न इस रूप में हो जाता है कि समय किस समय पर प्रारम्भ हुआ था? दुनिया कहाँ शुरू हुई थी? 'स्थान' या 'देश' कहाँ शुरू हुआ था? एक यह भी प्रश्न है, 'दुनिया कैसे शुरू हुई थी?' कुछ कुशाग्र-बुद्धि सम्भव है, इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करें। किन्तु राम यह काम उन्हीं के लिए छोड़ देगा। राम अपने को ऐसे कामों में नहीं लगा सकता। कुछ लोग ऐसे हैं जो शौक़ से इन प्रश्नों के हल करने में अपना समय वितावेंगे। किन्तु इससे होता ही क्या है! कुछ दूर बढ़ने पर उनको बरबश रुक जाना पड़ेगा, मानो वज्र जैसी कठोर पत्थर की दीवार उनका मार्ग रोके खड़ी है।

देखिये, यह एक चिमटा है। चिमटा इस चीज़ को, उस चीज़ को तथा अन्य चीज़ों को दबा कर उठा सकता है, किन्तु क्या पलट कर वह उस हाथ को दबाच सकता है जो उसे पकड़े हुए है, उसे परिचालित करता है। इसी तरह देश, काल और वस्तु की यह त्रिमूर्ति संसार भर के दृश्य पदार्थों को आयत्त कर सकती है, किन्तु जो आत्मा उसके पीछे,

उसके आधार में है, उस आत्मा को वह आयत्त नहीं कर सकती।

एक बार चार मनुष्य अस्पताल में भेजे गये थे, क्योंकि उनकी आँखों में मोतियाविन्द था। उन्हें आशा थी कि अस्पताल में नश्तर द्वारा उनकी आँख बना दी जायगी। मोतियाविन्द से पीड़ित होने के कारण प्रकृत्या ये लोग बज्र अन्धे थे, और उनकी केवल चार ही इन्द्रियाँ शेष रह गई थीं। एक दिन वे खिड़की के काँच के रंग के सम्बन्ध में विवाद करने लगे। एक ने कहा, "मेरा लड़का विश्वविद्यालय का छात्र है, एक दिन यहाँ आया था और मुझसे कहता था कि 'काँच पीला है।' अतः वह अवश्य पीला होगा।" दूसरे ने कहा, "मेरा चाचा, जो म्युनीसिपल कमिश्नर है, उस दिन यहाँ आया था और मुझसे कहता था कि 'काँच लाल है।' वह बड़ा चतुर है और उसे सब बातें मालूम हैं।" तब तीसरे ने कहा कि "मेरा एक चचेरा भाई, विश्वविद्यालय में अध्यापक है, वह मुझे देखने आया था और उसने मुझसे कहा था कि 'काँच हरा है'। अतः अवश्य ही ठीक कहता होगा"। इसी तरह वे काँच के रंग के सम्बन्ध में परस्पर झगड़ते रहे। तदुपरान्त उन्होंने स्वयं उसे जानने का प्रयत्न शुरू किया कि आखिर शीशा किस रंग का है। पहले उन्होंने उस पर अपनी जीभ चलाई, और स्वाद लेने का प्रयत्न किया। किन्तु रंग इस उपाय से नहीं जाना जा सकता था। तब उन्होंने उसे थपथपाया और उसकी आवाज सुनी। किन्तु रंग का पता इस ढंग से भी न लगा। उन्होंने उसे सूँघने का यत्न किया और फिर उसे टटोला, किन्तु खेद! छूने, सूँघने, सुनने और चखने की इन्द्रियाँ

उन्हें यह न बता सकीं कि काँच किस रंग का है। इसी प्रकार 'अनन्त' को हम इन्द्रियों के द्वारा नहीं जान सकते। तनिक सोचिये तो—यह कैसी असम्भव बात होगी: यदि 'अनन्त' को आप इन्द्रियों के द्वारा जान लें। तब तो 'अनन्त' को 'सान्त' से अवश्य ही छोटा होना पड़ेगा। महानर्थ! 'अनन्त' को तो हम केवल विश्व-भावना, विश्वानुभूति अथवा ब्रह्म-भावना के द्वारा ही जान सकते हैं। यह दियासलाई मेरे हाथ में है। दियासलाई उस हाथ से छोटी है जो उसे पकड़े है। इसी प्रकार आप समझ सकते हैं कि 'सान्त' क्योंकर 'अनन्त' को ग्रहण नहीं कर सकता? इन्द्रियाँ उसे कैसे जान सकती हैं, जो उनसे परे है। आत्मा के ज्ञान के लिए अपने से बाहर किसी वस्तु का सहारा मत लो, अन्यथा उन अंधों का सा हाल होगा जिन्हें दूसरों ने काँच का रंग बताया था, किन्तु वे खुद नहीं जानते थे कि वास्तव में काँच किस रंग का है, जिन्होंने भाई या लड़के के कहने से उसे लाल, पीला लाल रक्खा था। मुझसे कहा जाता है कि दो हिस्सा हाईड्रोजन और एक हिस्सा आक्सीजन मिल कर पानी पैदा करता है। मैं सचमुच क्या इसे जानता हूँ? नहीं, यद्यपि सभी रासायनिक मुझे ऐसा बताते हैं कि यह बात सत्य है। किन्तु मैं केवल तभी जानूँगा जब मैं स्वयं प्रयोगशाला में जाकर प्रयोग कर चुकूँगा। तभी यह मेरे लिए वास्तविक तथ्य हो जायगा चाहे कृष्ण, ईसा, या बुद्ध कोई भी हो आप अपने से बाहर के किसी प्रमाण पर भरोसा नहीं कर सकते। उसे जानने के लिए तुम्हें स्वयं उसे जानना-बूझना होगा। तुम्हें चाहे किसी अच्छे प्रामाणिक सूत्र से मालूम हुआ हो, उदाहरणार्थ किसी अध्यापक से, कि काँच

ज्ञात है, किन्तु इसे जानने के लिए तुम्हें स्वयं उसे देखना होगा। यदि कोई युवक कहे—"मेरे पिता की पाचन क्रिया बड़ी अच्छी है, वह मेरे बदले मेरा भोजन पचा देगा" तो क्या वह ऐसा कर सकता है? नहीं, लड़के को आप ही अपना भोजन पचाना पड़ेगा। मैं उन महान् आत्माओं को प्रणाम करता हूँ जो संसार-विख्यात हैं, किन्तु वे मेरे बदले मेरा भोजन नहीं पचा सकते। उसे तो स्वयं मुझे ही पचाना होगा। परमेश्वर के साथ अभिन्नता का निश्चय वे मेरे लिए मुझे नहीं दिला सकते, मुझे स्वयं अपने लिए यह निश्चय करना होगा। सत्य को हम केवल विश्व-भावना, विश्वानुभूति के द्वारा ही जान सकते हैं। इसके बारे में मैं तुम्हें बाद में बताऊँगा।

नास्तिक और स्वच्छन्द विचारक—दोनों कहते हैं, "मैं स्वयं अनुसंधान करूँगा" अच्छा, देखें वे कहाँ तक पहुँचते हैं। एक कहता है कि उजियाला इस दियासलाई में है। वह उसका पता कैसे लगाये? इसके लिए वह दियासलाई के टुकड़े टुकड़े कर डालता है, किन्तु प्रकाश नहीं मिलता। फिर वह दियासलाई की बुकनी बना डालता है, फिर भी रोशनी नहीं मिलती। वह जानता है कि इस शरीर में प्राण है, इसलिए शरीर लेकर उसके खंड-खंड कर देता है, पर प्राण नहीं मिलता। वह हड्डियों को चूर चूर कर डालता है, परन्तु वहाँ भी प्राण नहीं मिलता। अन्त में वह पाता है कि यदि कोई "वास्तविकता" है, तो वह 'मैं ही' हूँ, परन्तु यह है अज्ञेय। जहां तक वह पहुँचा है, वहां तक ठीक है। किन्तु अभी तक उसने विश्वभावना विकसित नहीं की है, उसने 'अनन्त' को जानने के लिए केवल अपनी परिमित

भावना अथवा ज्ञान से ही काम लिया है। और यह स्पष्ट है कि इस तरह से वह उसे कदापि नहीं जान सकता। देखिये, बुद्धि से हम 'अनन्त' तक पहुँच सकते हैं, और जान सकते हैं कि 'अनन्त' है, परन्तु हम नहीं बता सकते कि वह है क्या। यह बात इस तरह है जैसे पीछे से आकर कोई मनुष्य मेरी आँखें मीच ले। अब मैं यह तो जानता हूँ कि पीछे कोई है, और अवश्य ही वह कोई मित्र होगा, क्योंकि कोई अपरिचित ऐसा करने की धृष्टता न करेगा, परन्तु मैं नहीं कह सकता कि वह कौन है। अथवा वह दीवाल पर गेंद फेंकने के समान है। गेंद दीवाल पर पहुँचेगी तो, पर उलटी उछल आवेगी। बुद्धि 'अनन्त' में प्रवेश नहीं करती। यदि 'अनन्त' जाना जा सकता तो तुरन्त अद्वैत के स्थान में द्वैत स्थापित हो जाता, और न तो ज्ञाता ही अनन्त न रह जाता और न ज्ञेय ही 'अनन्त' रहता। हाँ, विश्वभावना से हम सार्वभौमिकता स्थापित करते हैं।

अब, इस ब्रह्मभावना के विकास के विषय में सुनिये। पहले राम तुमसे बच्चे के विषय में कुछ कहेगा। बच्चे में न तो विश्व का ज्ञान होता है, न उसमें अपनी परिच्छिन्नता का ही ज्ञान होता है। यह एक छोटा सा नन्हा बच्चा है। वह क्या जानता है? कुछ नहीं! तो क्या हम उससे तब तक बातचीत नहीं करते जब तक वह अपने सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं लेता, तब तक क्या हम उसके जानने की राह देखा करते हैं, नहीं। जिन वस्तुओं से वह घिरा रहता है, उनका ज्ञान जब तक बच्चे को नहीं हो जाता, तब तक क्या हम रुके रहते हैं और उनकी चर्चा बच्चे से नहीं करते? नहीं! जब बच्चा बहुत ही छोटा है, तभी उसका नामकरण

हो जाता है। हम उसे मुनुआ कहेंगे। माता-पिता बच्चे को अब इसी नाम से पुकारने लगते हैं। वे उससे बातचीत करते हैं। और उससे विभिन्न वस्तुओं की चर्चा करते हैं। कहते हैं, तू बड़ा सुहावना है, बड़ा सुन्दर है, बड़ा प्यारा है। लोग उससे माता और पिता की बात करते हैं। बच्चा अब तनिक बड़ा होता है और अपने आप इधर-उधर खेलने लगता है। तब वह ऐसे शब्द करता है जो समझ में तो नहीं आते, किन्तु बार बार अम्मा और दादा की भनक कान में पड़ने से वह भी उन ध्वनियों की नकल करता है। जब बच्चा 'दा' कहता है, तब माता पिता से कहती है कि बच्चा तुम्हें पुकारता है। पिता बच्चे से कहता है, "यहां आओ,"। क्या बच्चा इसका अर्थ जानता है? नहीं। केवल पिता के फैले हुए हाथों और पुचकारने से बच्चे पर इस बात का संस्कार पड़ता है कि यह सब इशारा पिता के पास जाने के लिए है। इसी तरह हम देखते है कि बच्चे में अपनी परिच्छिन्नता के बोध का विकास उन लोगों की संगति से होने लगता है, जिनमें वह रहता है। इसी तरह विश्व-भावना का बोध उन लोगों की संगति से उन्नति करता है जिनमें वह होती है, और जो अपने ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व का अनुभव करते हैं। यदि तुम खिन्नता का अनुभव करना चाहते हो, तो तुम्हें उन लोगों के साथ रहिए-सहिए जो सदा मुँह लटकाये रहते हैं। यदि प्रसन्नता का अनुभव करना है तो उनका संग कीजिये, जो जीवन और उल्लास से परिपूर्ण हैं। तात्पर्य यह कि केवल संगति से इस प्रकार की भावना प्रज्ज्वलित होती है। चाहे प्रकृति की संगति से हो, चाहे ज्ञानवान् महात्माओं की और चाहे गुरु ज्ञानवान् महात्माओं के लेखों की संगति से हो, किन्तु

संगति, केवल सद्संगति ही ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करती है। माता-पिता पुकारते हैं 'मुनुआ', और बच्चा मुनुआ हो जाता है। वह इसी तरह रजुआ भी हो सकता था। क्या ऐसा नहीं होता? मानो तीन या चार बच्चे एक कमरे में सो रहे हैं। मुनुआ पुकारा जाता है। अकेला मुनुआ ही जवाब देता है, रजुआ नहीं। जोर से पुकार होने पर भी रजुआ नहीं जागता। क्योंकि वह पुकारा नहीं गया था।

जिस मनुष्य ने आत्मा से अपनी अभिन्नता का अनुभव कर लिया है उससे अज्ञानवश ही ऐसा कहा जा सकता है कि तुम घास की एक पत्ती ही बना दो तो जाने! प्रश्नकर्त्ता कहते रहते हैं:—"अच्छा देखिये, आप तो अपने को परमेश्वर कहते हैं, आप क्या कर सकते हैं? परमेश्वर ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की और आप घास की एक पत्ती तक नहीं बना सकते। फिर भी आप अपने को परमेश्वर कहते हैं! मुझे दिखाइये आप क्या कर सकते हैं?" क्या ईसा को भी इसी तरह का प्रलोभन नहीं दिया गया था? उसने शैतान के तानों की परवाह नहीं की, शैतान ने उससे पहाड़ से फाँदने का आग्रह किया था। किन्तु ईसा ने उसे दुत्कार दिया, "तू पीछे हट जा।" सारी शक्तियां उसके पास थीं, किन्तु अविश्वासी को वह क्यों करामात करके दिखावे। अनगिनती करामातें भी संशयशील को विश्वासी नहीं बना सकतीं। उसे आत्मानुभव तब तक नहीं हो सकता, जब तक उसमें भी विश्व के साथ तद्यात्म होने की भावना उदय नहीं होती। जब मैं कहता हूँ, "मैं परमेश्वर हूँ" तब मेरा क्या आशय है? क्या इस क्षुद्र व्यक्तित्व से? नहीं, कदापि नहीं? इस मन से? नहीं, कदापि नहीं! इस प्रकार

समझिये। मान लो, एक मनुष्य शास्त्री है, उसने यह उपाधि प्राप्त की है, मान लो, एक मनुष्य राजा है, और राजा उसकी पदवी है। अब यह उपाधियाँ, पदवियाँ व्यक्तित्व के लिए बाहरी वस्तु हैं, जैसे कोई वस्तु ऊपर से उसपर टाँक दी गई हो। इसी तरह, जब तुम कहते हो कि सांप काला है, तो यह कालापन साँप नहीं हुआ, यह तो साँप से बाहर की वस्तु है, साँप का एक गुण है। किन्तु जब तुम कहते हो कि साँप रस्सी है, तब यह कथन एक पूर्णतया भिन्न कथन बन जाता है। मैं सम्राट हूँ। सम्राट एक उपाधि, एक पदवी है। किन्तु जब तुम कहते हो कि मैं परमेश्वर हूँ तब इसका अभिप्राय यह तुच्छ अहं नहीं है, जो हम देखते हैं, उसका अभिप्राय ऐसा है जैसे रस्सी साँप है। रस्सी का साँप होना एक भ्रान्ति थी। अज्ञानवश तुमने रस्सी को साँप समझा था, किन्तु यह सत्य नहीं था, वह तो वास्तव में रस्सी थी। इसी तरह यह व्यक्तित्व भी एक भ्रान्ति है। मैं ब्रह्म हूं और केवल ब्रह्म, नित्य, एक और सर्व! मेरा कोई भी प्रतिद्वंद्वी नहीं।

इसे तनिक और दूर तक समझाने के उद्देश्य से—देखिये ये दो लहरें हैं। एक लहर में जैसा पानी है, दूसरी में क्या उससे कुछ भिन्न पानी है? नहीं, जल ठीक एक जैसा है! सम्पूर्ण सागर में जल ठीक एक जैसा है। यहां एक रूप दिखाई देता है और वहां दूसरा। क्या इसमें आत्मा कोई और है और उसमें कोई और? नहीं। केवल एक ही आत्मा सर्वरूप है, वही अविछिन्न है। ये शरीर सारे के सारे आत्मा के शरीर हैं। ये सब मेरे शरीर हैं। कोई भेद नहीं है। विभिन्न भाषाओं में 'प्रकाश' को हम विभिन्न नामों से पुकारते हैं। अँग्रेजी में उसे 'लाइट' (light) कहते हैं, जर्मनी में 'लिख्ट'

(licht) इत्यादि। प्रकाश तो हर एक नाम में एक ही है। क्या ऐसा नहीं है ? प्रकाश तो सर्वत्र वही एक है, यद्यपि हम उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। नामों से आत्मा में कोई भेद नहीं पड़ता, वह निःसन्देह सर्वरूप है, (सर्वं खल्विदं ब्रह्म)।

शरीर एक सर्वांगपूर्ण इकाई है। यदि हाथ स्वतंत्र रूप से रहने की ठाने और कहे कि मैं तो रोटी कमाने वाला हूँ, मैं ही सारी कमाई विलसूंगा, तो यह कैसे निभे ? यदि वह जिद करे कि भोजन मुख से न खाया जाय, और पेट से न पचाया जाय और सबमें उसका वितरण न किया जाय, वरन् पिचकारी द्वारा हाथ में पेवस्त किया जाय तो बताओ क्या हाल होगा ? है हंसी की बात कि नहीं ? यदि रुपये हाथ से चिपका दिये जांय, यदि एक पीली बरैया हाथ में काट खाय तो हाथ फूल जायगा और दर्द करेगा। यदि हाथ काट दिया जाय तो निरन्तर पीड़ा और क्लेश रहेगा, क्योंकि हाथ समग्र देह का अंग है। इसी से जब भोजन उदर द्वारा पचाया जाता है, तब हाथ भी पोषण का उचित अंश पाता है। सर्वांग एक साथ काम करता है। ठीक इसी प्रकार जब हम समग्र विश्व से अपने आप को काट कर अलग कर लेते हैं; तब हम क्लेश पाते हैं, और बराबर क्लेश पाते रहते हैं, जब तक हमें अपनी विश्वव्यापकता का अनुभव नहीं होता। इस अभिनय में विश्राम के लिए कोई स्थान नहीं। जब विश्व के साथ तादात्म होने की भावना जाग्रत होती है। तब हमारी समझ में आता है कि ये सारे शरीर अन्योन्याश्रित हैं, ये सब मेरे शरीर हैं. कहीं कोई द्वन्द्व नहीं है।

एक बार एक स्वामी किसी सुनार के पास जाकर कहने

लगा—"अपनी सर्वोत्तम अंगूठी निकालो और परमेश्वर की अंगुली में पहना दो।" तदुपरान्त उसने जूते वाले से जाकर कहा—"अपना सबसे बढ़िया जोड़ा निकालो और परमेश्वर के पैरों में पहना दो।" इन सब बातों से उसका अभिप्राय बराबर अपनी देह से था। जब लोगों ने यह सुना, तो उसे नास्तिक और पाखण्डी कहने लगे और बोले,—इसे कारागार में डाल दो। पकड़े जाने पर स्वामी ने कहा—पहले मेरी विनय सुन लें। जेल में जाने से पहले मैं आप लोगों से कुछ कहना चाहता हूँ। उसने लोगों से पूछा "यह संसार किसका है?" उन्होंने उत्तर दिया, "परमेश्वर का"। 'तारा-गण और सूर्य किसके हैं?' 'परमेश्वर के।' 'खेत और जो कुछ उनमें होता है किसके हैं?' "परमेश्वर के।" क्या तुम ऐसा विश्वास करते हो? उन्होंने उत्तर दिया, "क्यों नहीं, यह तो सत्य है।" तब उसने पूछा—यह शरीर किसका है? उन्होंने कहा—परमेश्वर का। पैर किसके हैं? परमेश्वर के। अँगुलियाँ किसकी हैं? परमेश्वर की। सचमुच यह सब परमेश्वर का है। चूँकि उन्हीं के तर्क से उसने उन्हें दिखा दिया कि उसने जो कुछ कहा था ठीक था, इसलिए उसे कैसे कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता था! वे अज्ञानी थे, उनकी दृष्टि स्वामी जितनी गहरी नहीं थी।

भारत में जब कोई आदमी मरने लगता है, तब लोग कहते हैं कि वह शरीर छोड़ रहा है। यहां लोग कहते हैं कि वह प्रेत को छोड़ रहा है। यहां जिस कथन का व्यवहार होता है उसकी अपेक्षा वहां का कथन अधिक युक्तिसंगत है, क्योंकि वहां की बोली सूचित करती है कि शरीर से बाहर प्रेत कोई अन्य वस्तु है। वहां ऐसा कहते हैं—"उसके प्राण निकल गये।"

एक बार तीन मनुष्य एक साथ बैठे हुए शराब पी रहे थे। खूब नशा चढ़ा हुआ था। उनमें से एक ने प्रस्ताव किया, "कुछ खाया-पिया जाय।" इस पर उन्होंने अपने एक साथी को गोश्त और अन्य भोजन-सामग्री लाने को भेज दिया ताकि वे भर पेट खा सकें। जब वह बाहर गया हुआ था तब शेष दो में से एक को बेचैनी मालूम हुई। उसने अपने साथी से कहा, "मेरा तो प्राण निकलने वाला है।" दूसरे ने कहा, नहीं, भाई नहीं, तुम्हारे प्राण नहीं निकल सकते और यह कह कर उस व्यथित मनुष्य की नाक दबा ली, ताकि दम न निकल सके। उसने उसके कान और मुँह भी बन्द कर दिये। उसने सोचा कि इस तरह से सांस शरीर में ही रह जायगी। किन्तु हम भली भाँति जानते हैं कि उसके इस कृत्य का परिणाम क्या हुआ होगा! उसे इस व्यावहारिक बात का ज्ञान न था, उसने इस कार्य की निरर्थकता नहीं समझी थी।

श्रीकृष्ण एक दावत देनेवाले थे। सभी मंत्री आमंत्रित किये गये थे, किन्तु अपनी प्रियतमा राधा को उन्होंने निमंत्रण नहीं दिया था। प्रधान मंत्री ने कृष्ण से राधा को निमंत्रण भेजने का आग्रह किया। किन्तु उन्होंने मंत्री की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और कहा "नहीं।" महामंत्री ने भी कृष्ण की बात सुनी-अनसुनी करके राधा से जाकर कहा—कृष्ण दावत देनेवाले हैं। राधा ने मंत्री को समझाया, जब आप कोई उत्सव करते हैं, तब आप अपने मित्रों को तो आमंत्रित करते हैं, किन्तु क्या खुद अपने को भी नेवता भेजते हैं? मैं जानती हूँ कि कृष्ण दावत देनेवाले हैं। हम दोनों एक हैं। फिर मुझे नेवता कैसा?

एक दिन मजनू की माशूका ने कहा कि मेरी तबियत

ठीक नहीं है, और कोई दवा भी फायदा करती मालूम नहीं होती। इसलिए वैद्य बुलाया गया। पुरानी रीति के अनुसार वह तुरन्त ही लैली की फस्त खोलने के लिए आगे बढ़ा। हाथ में एक छोटा सा घाव कर दिया ताकि खराब खून निकल जाय। किन्तु लैली के बदन से खून निकला ही नहीं। हाँ, मजनू के बदन से खून की धार वह निकली। इन प्रेमियों की एकता ऐसी ही थी!

खून रगे-मजनूं से निकला, फस्त लैला की जो ली।
इश्क में तासीर है, पर जज्बे-कामिल चाहिए॥

संसार।

मैं ने इस संसार को देखा, मनन किया, और जाना,
इस पहली पोथी ने मेरा अच्छा वर्णन किया था,
उस के अक्षर नक्शी खिलौने थे,
विभिन्न ढंगों से उसने खोद खोद कर मुझे अंकित किया—
उस दिन की यह अति विचित्र वर्णमाला,
मैं रद्दी कागज की टोकरी के हवाले करता हूँ।
मैं इस संसार रूपी पुस्तिका के पन्ने
अपनी प्यारी चिलम सुलगाने के लिए जलाता हूँ।
और अपने मुँह द्वारा इसे पीता और फूँक देता हूँ।
तब देखता हूँ लच्छेदार धूम्र को बाहर जाते हुए।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सम्मोहन विद्या और वेदान्त।

१. इमरसन का कहना है कि किसी को चोर कहो और वह चोरी करने लगेगा। दूसरे शब्दों में किसी तरह का सुझाव करो और तुम्हें प्रत्यक्ष उसके अनुरूप परिणाम दिखाई देगा। यह कथन कुछ उदाहरणों में ठीक उतरता है, किन्तु सर्वव्यापी रूप से नहीं। कुछ उदाहरणों में सूचना प्रत्यक्ष फल पैदा कर सकती है, किन्तु दूसरे स्थानों में उसका बिलकुल विपरीत परिणाम भी हो सकता है। सूचना सीधा प्रभाव उत्पन्न करती है—जो लोग इस बात पर अनुचित जोर देते हैं वे केवल आधे सत्य से ही परिचित हैं। वेदान्त के अनुसार, सूचनायें अपना प्रभाव उसी तरह पैदा करती हैं, जैसे बिजली—एक अपवाह द्वारा और दूसरा प्रवाहन के द्वारा। उन मामलों में परिणाम सीधा और सूचना-अनुरूप होता है जहाँ हमारी सूचना सीधे विषय को छूती है, किन्तु जहां पर हमारी सूचना सीधे हमारे विषय या रोगी तक नहीं पहुँच सकती, अर्थात् जहाँ रोगी की बुद्धि सूचना देनेवाले व्यक्ति से द्वेष रखती है और बीच में बाधक बनकर सूचना को उसके कारण शरीर से सीधा स्पर्श नहीं होने देती, वहाँ परिणाम सोचे हुए परिणाम से बिलकुल उलटा होता है। ऐसा परिणाम सम्मोहन की अपवाह क्रिया कहलाती है। और पहला सीधा परिणाम सम्मोहन की प्रवाहन क्रिया है।

'कारण' शरीर मनुष्य के सम्पूर्ण मानसिक संस्कारों और

सुप्त शक्तियों का चेतना से नीचे स्तर पर स्थित भंडार है। हमारे सारे काम-काज, चेष्टायें और चाल-ढाल बर्ताव और दशायें इसी 'कारण' शरीर में निहित सामग्री का फैलाव मात्र है, उसके अनुकूल परिणाम का होना अनिवार्य है। 'कारण' शरीर मनुष्य का हृदय, केन्द्र, स्वामी है अथवा तुम उसे कर्तृत्वप्रधान अधिकरणनिष्ठ मन भी कह सकते हो।
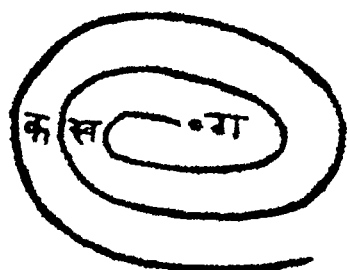
ग—कारण शरीर।

ख—सूक्ष्म शरीर या मानसिक क्षेत्र, अन्तःकरण।

क—स्थूल शरीर।

स्थूल शरीर द्वारा किया हुआ कोई भी काम तुरन्त मानसिक शक्ति अथवा विचार के रूप में परिणत हो जाता है, और कुछ दिनों तक सूक्ष्म शरीर में जो साथ के चक्र में 'ख' से दर्शाया गया है—रहने के बाद, कारण शरीर में, जो 'ग' से दर्शाया गया है—पहुँच जाता है। जो संकल्प या विचार स्थूल जगत से न आकर अनायास सीधे मानसिक लोक, सूक्ष्म शरीर 'ख' में प्रकट होते दिखाई देते हैं, वे कारण शरीर में पूर्वसंचित मानसिक शक्ति के प्रादुर्भाव मात्र हैं, जो कारण शरीर से नीचे उतरकर सूक्ष्मशरीर 'ख' में प्रकट होती है। इस प्रकार क, ख, और ग अर्थात् इन तीन शरीरों का पारस्परिक सम्बन्ध कुछ-कुछ वायु, जल और वाष्प के सम्बन्ध के समान है अथवा ऐसा है जैसे नदी का हिम-स्थित स्रोत, नदी का पर्वतीय भाग, और नदी का मैदानी

भाग। वास्तव में, इन तीनों का सम्बन्ध एक सिलसिले में चलता है।

मानो, तुमने राह में किसी बीमार को पड़े देखा। स्वभावतः तुम उसकी सहायता करने पहुँच गये। अब जब तुम उसकी सेवा-सुश्रूषा में लगे हुए हो, तब तुम्हारा ध्यान उस कर्त्तव्य की ओर बिलकुल नहीं जाता, तुम तो पीड़ित मनुष्य की पीड़ा हरने के लिए भरसक चेष्टा करते रहते हो, तुम्हारी सारी इन्द्रियां और सारे अंग पूर्णतया क्रियाशील हो जाते हैं। हाँ, जब तुम उस पीड़ित व्यक्ति की सेवा कर चुकते हो और तुम्हारा शरीर और इन्द्रियां विश्राम करने लगती हैं, तब तुम स्वतः देखोगे कि तुम्हारी वह क्रियाशीलता और शक्ति जो पहले इन्द्रियों के क्षेत्र में काम करती थी, 'ख' लोक में पहुँच गई है। दूसरे शब्दों में तुम्हारा चित्त स्वभावतः अपने किये हुए कार्य का चिन्तन करने लग जाता है, और तुम अपनी चेतना में उस कार्य की पवित्रता और महत्ता पर विचार करने लगते हो। कुछ देर बाद तुम देखोगे कि जो शक्ति 'ख' लोक में काम कर रही थी, वह वहाँ से विदा हो गई है। वह कहाँ चली गई? क्या वह समाप्त हो गई है? ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकृति में कुछ भी नष्ट नहीं होता। वेदान्त के अनुसार यह शक्ति सिर्फ अदृश्य हो गई है, और चेतना के निम्नतल 'क' में जाकर कारण शरीर में पहुँच गई है। इसी प्रकार कारण शरीर में जो मानसिक शक्तियाँ संचित होती रहती हैं, वही 'ख' लोक में हमारे स्वप्नों, हमारी हृदयस्थ भावनाओं, हमारी स्वाभाविक रुचियों, प्रवृत्तियों और कार्यों में प्रकट होती हैं। वेदान्त के अनुसार हमारी स्वाभाविक रुचियों की उत्पत्ति का यही रहस्य है।

परीक्षात्मक प्रमाणः—

जागृत या सम्मोहित अवस्था में किसी मनुष्य के कारण शरीर को सीधे या वक्र रेखा से स्पर्श कीजिये। वहां जिस प्रवृत्ति या अभिरुचि की भावना पहुंच जायगी, वह निस्संदेह ठीक समय पर स्वयं प्रकट होगी। जब कोई मनुष्य सम्मोहित किया जाता है, और उसे कोई ऐसी उत्तर-सम्मोहन-सूचना दी जाती है कि वह जागने के बाद किसी समय पर कोई विशेष कार्य करे तो वह सूचना उस कार्य की प्रबल रुचि के रूप में ठीक समय पर निस्सन्देह प्रकट होती है। इस प्रकार जैसा कि इस सम्मोहन-क्रिया के उदाहरण में बतलाया गया है कि कारण शरीर में प्रविष्ट सूचना के अनुरूप फल प्रकट किया जा सकता है, वैसे ही वेदान्त मानता है कि मनुष्य के सभी कामों में उनको प्रकट करनेवाले संकल्प कारण शरीर में पहले ही से विद्यमान रहते हैं। वेदान्त के अनुसार ये सूचनायें, ये संकल्प इंद्रियों के सम्मोहन से या मानसिक संवेदनाओं के सम्मोहन से अथवा सम्मोहन के और भी किसी रूप से कारण शरीर में प्रविष्ट होते रहते हैं, क्योंकि वेदान्त के अनुसार संपूर्ण संसार ही एक विशेष सम्मोहन-क्रिया से बना हुआ है। बस, कारण शरीर में स्वास्थ्य की सूचना भर दो, स्थूल शरीर स्वस्थ हुए बिना न रहेगा। कारण शरीर में परमेश्वरत्व की सूचना लगाने दो, मनुष्य महात्मा हुए बिना नहीं रह सकता। कारण शरीर में गुलामी और कमजोरी की सूचनायें भरने दो, स्थूल शरीर का दुर्बल और गुलाम होना अनिवार्य हो जायगा। अपने भले बुरे का मनुष्य आप ही विधाता है, क्योंकि उसका कारण शरीर ही उसके चारों ओर की परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी है।

जिस प्रकार स्वप्नाचार—सोते समय चलने फिरने की आदत या सम्मोहन की अवस्था में व्यक्ति विशेष को वहाँ झील दिखाई पड़ती है, जहां दूसरो के लिए झील-चील का कोई निशान तक नहीं होता; उसे वहाँ मछलियों से भरा तालाव दिखाई देता है, जहाँ दूसरों के लिए तालाव का नाम तक नहीं होता, वह ऐसी ऐसी चीजों को देखता है, जो दूसरों के लिए कभी मौजूद नहीं रहतीं; किन्तु जिस प्रकार ये सारे दृश्य, वनावटी पदार्थ उसी संमोहित मनुष्य की निजात्मा से उत्पन्न और पोषित होते हैं उसी प्रकार वेदान्त के अनुसार हमको दिखाई देनेवाला यह संपूर्ण संसार विशुद्ध रूप से केवल हमारी निजात्मा से ही धारण होता है। अव उक्त सम्मोहनजन्य अथवा स्वप्नाचार के और सांसारिक दृश्यों में अन्तर केवल इतना है कि वे संसार की अपेक्षा अल्प कालीन और क्षणिक होते हैं। यह संसार की अवस्था ठीक ऐसी वात है जैसे कोई मनुष्य सम्मोहन की अवस्था में डाल दिया गया हो और फिर उसे उस अवस्था से वाहर निकालने की सुधि भुला दी गई हो। संसार के सभी मनुष्य संसार के इस विचित्रतम जादू से मोहित किये हुए हैं, और उनको इस सम्मोहित अवस्था से निकालने में वहुत, वहुत समय लग सकता है। यह सम्मोहन तव तक चलता रहता है, जव तक कोई ब्रह्मज्ञानी, जीवन-मुक्त आकर उनके मोह को दूर करके उनको असली ब्रह्मज्ञान का साक्षात् न करा दे, और वे स्वस्वरूप में न जाग उठें। वह जो सार तत्त्व है, जो सम्पूर्ण दृश्य जगत् का आधार है, वही वास्तव में सत् है, और जो कुछ उसके ऊपर आरोपित है, वह अवश्य ही भ्रमात्मक और सम्मोहित व्यापार है। 'कारण' शरीर का

आधार और अधिष्ठान जो सब अवस्थाओं में; सम्मोहित अवस्था में, जागृत अवस्था में, स्वप्न की अवस्था में, और सुषुप्ति की अवस्था में सदा एकरस रहता है, वही सच्ची आत्मा या परम सत् है। दूसरी हरेक वस्तु उसके ऊपर आरोपित अतएव भ्रमात्मक और संमोहित व्यापार है। आत्मानुभव का अर्थ है इसी लाचारी और सम्मोहन की अवस्था से मुक्त होना तथा इस दिखाई पड़नेवाले दृश्य जगत् को उस परम सत् में लीन कर देना। माता और पिता की सूचनाओं, सुझावों और प्रस्तावों (suggestions) के द्वारा तथा हमारी इन्द्रियों की सूचनाओं के द्वारा उनका अनुमोदन होने पर हमें संसार की मोह-निद्रा प्राप्त होती है, अतः, इनकी प्रतिकूल सूचनाओं के समुचित प्रयोग से निराकरण या निवारण हो सकता है।

वास्तविक आत्मा ने गलती क्यों की ?

आपकी यह 'क्यों और किसलिए' तथा सम्पूर्ण चिन्तायें उसी सम्मोहन-क्रिया का अंशमात्र और परिणाम हैं: उसी मूल कारण की सन्तति और अनुचर हैं। ऐसे प्रश्न करने का अर्थ होता है कि आप कार्य के द्वारा कारण को आवृत्त की आशा करते हैं। यह तो पुत्र को पिता के आगे रखना, और गाड़ी को घोड़े के आगे रखना जैसा है। यह 'क्यों', 'कैसे' की प्रवृत्ति और प्रश्न पर प्रश्न करने की अभिरुचि—यह सम्पूर्ण शृंखला उसी सम्मोहनावस्था का अंश-मात्र, आविर्भाव मात्र है। सम्मोहन से मुक्ति की अवस्था में यह कुछ भी वर्तमान नहीं रहता। असली मूल अवस्था में इनमें से कुछ भी वर्तमान नहीं रहता, कोई प्रश्न संभव नहीं होता। यह संपूर्ण प्रश्न-माला कागज पर खिंची भूलभुलैयों का चक्कर है।

जिसका कहीं अन्त नहीं दिखाई देता। यह कार्य-कारण-शृंखला कभी रुकती नहीं, पेच पर पेंच डालती हुई सदा घूमती रहती है किन्तु वास्तविक सत्य, परम सत् उस कागज के समान है जिस पर ये सारे चक्कर, घेरे और भूल-भुलैया बनी हैं! कागज, सत्य शृंखला से परे है। इसलिए 'क्यों' और 'कैसे' के प्रश्नों को हल करने की चेष्टा करना, कागज को ही उस भूलभुलैया के चक्कर में आदि अथवा अन्त का सिरा बना देने के समान है। अरे, कागज तो चक्र के सभी घेरों, लपेटों और फेरों में एक समान मौजूद है। अतः राम सारे संसार को आदेश देता है कि अपने आपको भूलभुलैया या घूम-घुमौवा के चक्कर में, साँप की कुंडली में उलझा हुआ मत समझो। अपने आप को साँप की कुंडली का नियन्ता, शासक और स्वामी जानो, और अनुभव करो। बस, आपका कार्य-कारण-माला से परे हो जाना निश्चित, सुनिश्चित है। इसमें सन्देह नहीं। ॐ

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

मनुष्य स्वयं अपना भाग्य-विधाता है।

ता० २४ जनवरी १९०२ को गोल्डेन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान

ॐ

महिलाओं और सज्जनों के रूप में अखिल विश्व के स्वामिन्:—

आज का विषय है "मनुष्य आप ही अपने भाग्य का स्वामी है"। अभी तक हम मनुष्य के वास्तविक स्वरूप पर ही विचार करते आये हैं। वास्तविक मनुष्य की आत्मा परमेश्वर है, ब्रह्म है, ब्रह्म के सिवा कुछ नहीं। वास्तविक मनुष्य केवल एक ही शरीर का भाग्य विधाता नहीं है, वरन् सम्पूर्ण संसार, अखिल विश्व का स्वामी है।

किन्तु आज मनुष्य शब्द उसी अर्थ में ग्रहण किया जायगा जिसमें वेदान्तियों का 'सूक्ष्म शरीर' प्रयुक्त होता है। आप उसे इच्छा करने वाला, संकल्प करने वाला, वासना करने वाला मनुष्य कह सकते हैं। इस परिमित और संकीर्ण अर्थ में भी मनुष्य आप ही अपने भाग्य का स्वामी है। इस प्रश्न के बहुत से पहलू हैं। उन सब पर एक दिन में विचार नहीं किया जा सकता। आज हम केवल सूक्ष्म जगत् की दृष्टि से ही इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

शायद आप यह आसानी से विश्वास कर लेंगे कि पैदा होने पर मनुष्य अपनी परिस्थिति को बहुत-कुछ बदल सकता है। यदि एक मनुष्य किसी विशेष परिस्थिति में डाल दिया जाय, तो यह विश्वास करना आसान होगा कि

वह अपनी परिस्थति को थोड़ा-बहुत अपने अनुकूल बना सकता है, वह परिस्थितियों का संचालक बन सकता है, वह उनसे ऊपर उठ सकता है, और अपने आपको शिक्षित बना सकता है। गरीब से गरीब होकर भी मनुष्य अपने को देश का सबसे बड़ा धनी बना सकता है, जैसा कि कुछ लोगों ने किया भी है। भिखारी भी अपने को लोकमान्य और लोक-विख्यात बनाने में सफल हुए हैं। वे नीचे से नीची और घृणित से घृणित दशाओं में सफल हुए हैं। पैदा होने वाले व्यक्ति अपने को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में सफल हुए हैं। नेपालियन बोनापार्ट को देखिये, शेक्सपियर को देखिये, लंदन के एक नगर-अधिपति (लार्डमेयर) व्हिटिंगटन को देखिये! चीन के एक प्रधान मंत्री तो किसी समय एक गरीब किसान, निर्धन खेतिहर थे। यह सिद्ध करना सरल है कि संसार में जन्म लेने पर हम अपने जीवन-काल में ही अपनी हालत सुधार सकते हैं। किन्तु प्रश्न का कठिन भाग तो वह है जब वेदान्त कहता है कि आप अपने जन्म और अपने माता-पिता के भी कर्त्ता-धर्त्ता हैं। बच्चा मनुष्य का पिता है, किन्तु केवल इतना ही नहीं, बच्चा अपने पिता का भी पिता है। यह सिद्ध करना कठिन है किन्तु वेदान्त कहता है कि चाहे जिस दृष्टि से प्रश्न पर विचार कीजिये आप स्वयं अपने भाग्य के विधाता हैं। यदि आप जन्मान्ध हैं, तो भी आप स्वयं अपने भाग्य के स्वामी हैं। आप ही ने अपने आप को अन्धा बनाया है। यदि आप दरिद्र माता-पिता की सन्तान हैं, तो भी आप अपने भाग्य के स्वामी हैं, क्योंकि आपही ने अपने आपको गरीब माता पिता के यहां पैदा किया है। यदि आप अत्यन्त अवांछनीय अवस्था में

पैदा हुए हैं, तो भी आप ही अपने भाग्य के स्वामी हैं, आप ही ने ऐसा किया है। पैदा होने पर भी आप अपने भाग्य के स्वामी हैं। आज हम प्रश्न के इसी पहलू पर विचार करेंगे; मनुष्य कैसे स्वयं अपने जननी-जनक को चुनता है? दूसरे शब्दों में, आज हम किसी हद तक जीव के आवागमन के सिद्धान्त पर विचार करेंगे। हम उसके केवल एक अंश को ही लेंगे।

कुछ लोगों का विश्वास है कि जब मनुष्य मर जाता है, तब वह बिल्कुल मर जाता है, समूल नष्ट हो जाता है। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य मर तो जाता है किन्तु उसके हृदय में एक जन्म-जात, स्वाभाविक अमरत्व की इच्छा विद्यमान रहती है जिसके फल स्वरूप हम चाहते रहते हैं कि हमारे सम्बन्धी कभी न मरें, हमें अपने मित्रों को मरते हुए देखकर भीषण संताप होता है, अतएव ऐसे लोग और कुछ धार्मिक सम्प्रदाय भी ऐसा मानते हैं कि इसी स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति के लिए हमें किसी अन्य काल्पनिक संसार के अस्तित्व में विश्वास करना परमावश्यक है। फिर चाहे हम उस काल्पनिक जगत् का इस संसार की दृष्टि से कोई यथार्थ प्रमाण दे सकें या न दे सकें। कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है, और इन लोगों की बात में भी कुछ सत्यांश है। इन लोगों की बात जहाँ तक सत्य है उस पर इसी व्याख्यानमाला में पहले विचार हो चुका है। किन्तु वह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। मृत्यु के बाद तुम्हारा नरक जाना या स्वर्ग में प्रवेश करना सम्पूर्ण सत्य नहीं है। हमें इस जगत्-भौतिक जगत् की दृष्टि से सारी बातें समझनी-समझानी होंगी। आपके आध्यात्मिक जगत् के नियमों को आपके स्थूल जगत् के नियमों

के विरुद्ध जाने का कोई अधिकार नहीं है। यहाँ एक मनुष्य भूमि के भीतर तुपा हुआ है। 'मिट्टी मिट्टी में मिल गई है"- ऐसा उसकी कब्र पर कहा गया था। किन्तु तनिक सोचिये। देह अवश्य मिट्टी में मिल जाती है, किन्तु देह का नाश कहां हुआ, उसका केवल रूपान्तर हो गया। देह के स्थूल तत्त्व बदले हुए रूप में, एक दूसरे रूप में वर्तमान हैं, वे नष्ट नहीं हुए हैं। तुम्हारे मित्र का वही शरीर फिर कब्र पर सुन्दर गुलाब के रूप में प्रकट होगा, तथा किसी दिन फिर फलों और वृक्षों के रूप में उसका आविर्भाव होगा। उसका नाश तो नहीं हुआ है।

अच्छा, फिर हमें सन्देह किस बात में है? क्या आत्मा, सत्य, वास्तविक परमेश्वर का नाश हो गया है? नहीं, नहीं। वह कदापि नष्ट नहीं हो सकता। असली व्यक्ति, मनुष्य की आत्मा का कदापि नाश नहीं हो सकता, वह कभी नष्ट नहीं की जा सकती। तो फिर हम संदिग्ध, शंकाकुल किस सम्बन्ध में हैं? यह सूक्ष्म शरीर हो सकता है, जिसे दूसरे शब्दों में आप मानसिक वासनायें, मानसिक भावनायें, मनोविकार, मनोभिलाषायें, चित्त की लालसायें, अन्तःकरण की आकांक्षायें और संकल्प कह सकते हैं। इन्हीं से सूक्ष्म शरीर बनता है। इस सूक्ष्म शरीर का क्या होता है? मनुष्य तो भूमि में गड़ा गया, क्या उसके साथ ये चीजें भी गड़ गईं।? नहीं, नहीं। ये तोपी नहीं जा सकतीं। तो फिर उनका क्या होता है? सारा प्रश्न इस सूक्ष्म शरीर का है, जो तुम्हारी मानसिक क्रिया-शक्ति, आन्तरिक क्रियाशीलता, भीतरी विकारों, भावनाओं और कामनाओं से बनता है। इस क्रिया-शक्ति, इन मनोविकारों, भीतरी इच्छाओं के समु-

श्रय, इनके संयोग या समूह का परिणाम क्या होता है? यह कहना कि यह आध्यात्मिक जगत् में—यहाँ मेरा अभिप्राय उस जगत् से है जिसे आप यांत्रिक नियमों से सिद्ध नहीं कर सकते—चला जाता है, तुम्हारे विचार से भले ही बिलकुल ठीक हो, किन्तु विज्ञान इसी स्थूल जगत् की दृष्टि से प्रमाण चाहता है कि इस शक्ति का क्या होता है। विज्ञान ने निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि संसार में किसी वस्तु का नाश सर्वथा नाश नहीं होता। यह एक अटलः सार्वभौम नियम है। यह शक्ति के आग्रह का नियम है, यह द्रव्य के अविनश्वरत्व का नियम है। यह शक्ति के संरक्षत्व का नियम है। यह आपको बताता है कि कोई भी वस्तु समूल नष्ट नहीं हो सकती। अच्छा, यदि शरीर का नाश नहीं होता, केवल उसकी दशा बदल जाती है, और यदि हृदयस्थ परमेश्वरत्व ब्रह्मत्व का भी नाश नहीं होता, प्रत्युत वह नित्य, स्थायी निर्विकार रहती है तो फिर इन मनोभिलाषाओं, मानसिक क्रियाशक्ति, आन्तरिक जीवन का ही नाश क्यों हो जाना चाहिए? उनका नाश क्यों हो? शक्ति के संरक्षत्व का अनिवार्य नियम हमें बताता है कि उनका नाश कभी नहीं हो सकता। अतः तुम्हें यह कहने का कोई हक नहीं कि उनका नाश होगया। उन्हें भी जीवित रहना होगा, वे अवश्य जीवित रहेंगी। वे चाहे अपना स्थान बदल दें, वे चाहे अपनी दशा बदल दें, परन्तु उनका जीना जरूरी है, उनका नाश कदापि नहीं हो सकता। ठीक इस तरह जैसे तुम एक मोमबत्ती जलाते हो, तब हम क्या देखते हैं कि आध घंटे में सब कुछ गायब हो जाता है। किन्तु विज्ञान सिद्ध करता है। रसायन विद्या सिद्ध करती है कि उसका नाश नहीं हुआ, वह नष्ट

नहीं हुई है। एक वक्र जाँच-नली के द्वारा जिसमें तेजाब और कुछ अन्य रासायनिक द्रव्य होते हैं यह प्रकट हो जाता है कि मोमबत्ती के वे सब अंश जो नष्ट हुए प्रतीत होते थे वे नष्ट नहीं हुए उस वक्र जाँच-नली में रुक गये हैं। पानी से भरे हुए प्याले का सारा पानी भाप होकर उड़ गया। साधारण आदमी कहेगा, पानी नष्ट हो गया, समाप्त हो गया, किन्तु प्राकृतिक विज्ञान हमें बताता है कि जल नष्ट नहीं हुआ है। प्रयोगों से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि वह हवा में विद्यमान है, उसका नाश नहीं हो सकता।

इसी तरह मनुष्य जब मरता है, तो उसकी मानसिक शक्तियों, उसकी इच्छाओं, मनोविकारों, भावनाओं की ऊपरी दृष्टि से हानि होती दिखाई देती है, जैसे उनकी मृत्यु हो गई हो, किन्तु वेदान्त मानो अपनी आध्यात्मिक रसायन विद्या लेकर आता है और प्रयोग से सिद्ध करके तुम्हें दिखा देता है कि उनका नाश नहीं हुआ है, उनका नाश नहीं हो सकता है। अच्छा, यदि उनका नाश नहीं हुआ, तो फिर क्या हुआ? हमें इस प्रश्न को वैसे ही हल करना होगा जैसे हम गणित के प्रश्न को हल करते हैं। जब प्रश्न हमारे सामने आता है तब हमें उसमें दी हुई बातों और जो सिद्ध करना है उन दोनों पर अर्थात् प्रतिज्ञा और निष्पत्ति पर दृष्टि डालनी पड़ती है। हम दोनों पहलुओं पर विचार और मनन करते हैं। कभी कभी केवल प्रतिज्ञा पर ही विचार करने से हमें पूरी बात सिद्ध करने में सफलता प्राप्त हो जाती है, और कभी कभी हमें अन्तिम निष्पत्ति भी पर विचार करना पड़ता है, और बार बार विचार और मनन करना होता है, और प्रतिज्ञा को निष्पत्ति से जोड़ना पड़ता है, दी हुई और

सिद्ध होनेवाली बात में सम्बन्ध ढूँढ़ना पड़ता है। अच्छा, इस प्रश्न में प्रतिज्ञा क्या है, निष्पत्ति क्या है? जीवन और मृत्यु। जीवन दिया हुआ है और मृत्यु का रहस्य जानना है। जन्म का व्यापार प्रतिज्ञा के समान है, और मृत्यु का व्यापार निष्पत्ति के समान है, इसका विलोम भी ठीक माना जा सकता है। बात एक ही है। संसार में इतने अधिक मनुष्यों का जन्म होता है और रोज इतने अधिक मनुष्यों की मृत्यु होती है। अच्छा, जो लोग मरते प्रतीत होते हैं, यदि उनकी मानसिक शक्तियाँ, उनकी इच्छायें इत्यादि भी उनके साथ मरती हुई मान ली जायँ तो इस प्रकार का अनुमान करने से हम विज्ञान के स्थापित नियमों के विरुद्ध चल पड़ते हैं। यदि हमारी मानसिक शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं, तो कुछ तत्व शून्य में परिवर्तित होता माना जायगा। किन्तु आप जानते हैं कि ऐसा होना असम्भव है। कोई वस्तु 'कुछ नहीं' में कदापि परिणत नहीं हो सकती। इस भूल से बचने के लिए आपको अवश्यमेव विश्वास करना होगा कि मृत्यु के बाद मानसिक इच्छायें, मानसिक शक्तियाँ, मानसिक क्रिया-शीलता 'कुछ नहीं' शून्य में प्रवेश नहीं करती। तुम्हें पहले यह बात जरूर मान लेनी होगी, तुम्हें यह स्वीकार कर लेना होगा। तुम्हें ऐसा मान लेना उचित होगा, और तब आगे प्रश्न यह होगा, उनका होता क्या है?

अच्छा, अब अगले प्रश्न को कि हमारी मानसिक इच्छाओं का क्या होता है, हल करने के लिए हम जन्म के व्यापार पर विचार करेंगे। संसार में इतने अधिक मनुष्य पैदा होते हैं और सब हरएक बात में भिन्न भिन्न-विभिन्न

योग्यताओं, विभिन्न रुचियों, विभिन्न प्रवृत्तियों, विभिन्न मुखमुद्राओं, विभिन्न कपालरेखाओं, विभिन्न मस्तिष्क-रचनाओं के साथ कितने ही लोग इस संसार में पैदा होते रहते हैं। कुछ लोगों का दिमाग भारी होता है, कुछ का बहुत हलका, कुछ का सिर गोल होता है, और कुछ का अण्डाकार—तात्पर्य यह कि लोग संसार में भिन्न भिन्न गुप्त और प्रकट शक्तियों के साथ पैदा हो रहे हैं। सो क्यों? एक ही माता-पिता के बच्चे एकदम प्रतिकूल प्रवृत्तियों के होते हैं। कितने माता-पिता एक ही घर में राम और रावण को जन्म दे रहे हैं, कृष्ण और कंस को पैदा कर रहे हैं। महाविद्यालय के विद्यार्थी, एक ही छात्रावास में रहते हैं और एक ही अध्यापक से पढ़ते हैं, फिर भी विभिन्न—बिलकुल विपरीत अभिरुचियों के होते हैं। एक गणित को पसंद करता है, दूसरे की रुचि इतिहास की ओर जाती है। एक कवि होता है, और दूसरा काठ का उल्लू। अच्छा, लोगों की मनोवृत्तियों और स्वभावों में कोई अन्तर है या नहीं? है, अवश्य है। तुम इसे अस्वीकार नहीं कर सकते। कुछ लोग जन्म ही से प्रौढ़ बुद्धि होते हैं, बचपन ही से तेज होते हैं। दूसरे लड़कपन में ही बड़े सुस्त होते हैं। ये भेद क्यों? वेदान्त पूछता है कि इन जन्मजात प्रवृत्तियों और रुचियों के भेद का क्या कारण है। मनुष्यों की विभिन्न रुचियाँ क्यों होती हैं? यदि आप यह कह कर इस समस्या को हल करते हैं कि यह तो परमेश्वर की मर्जी है, यह तो परमेश्वर का काम है, तो यह कोई जवाब नहीं हुआ। यह तो केवल प्रश्न को टालना है। प्रश्न का टालना अदार्शनिक, दार्शनिक पद्धति के विपरीत है, यह तो अपनी मूर्खता की घोषणा करना है।

विज्ञान के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार इसे समझाइये। यदि आप यह कहते हैं कि लोगों का बचपन से ही इन विभिन्न इच्छाओं के साथ जन्म ग्रहण करना परमेश्वर की मर्जी है तो यह विज्ञान के प्रस्थापित नियमों का उल्लंघन करना है। इस तरह तो आप असली तौर पर यह मनवाना चाहते हैं कि 'शून्य' से 'कुछ' की उत्पत्ति होती है। यह असंभव है, आप इतना जानते हैं। इस कठिनाई से बचने के लिए आपको यह मानना, स्वीकार करना पड़ेगा कि स्वभावों और प्रवृत्तियों का यह भेद-भाव बच्चा मानो परलोक से ही अपने साथ लाता है। ये विभिन्न प्रकार की इच्छायें 'शून्य' से बच्चों में नहीं आती हैं, वरन् इनका भी 'कुछ' स्रोत होना है। 'शून्य' से उनका अस्तित्व, प्रादुर्भाव नहीं हो रहा है। उनका अस्तित्व पहले भी रहा है। दूसरे शब्दों में, ये सब वासनायें, जिनको लोग जन्म के समय अपने साथ लाते हैं, पूर्ववर्ती जीवन से आती हैं। ये इच्छायें कुछ समय पहले भी मौजूद थीं। यहाँ पर हम जन्म की निष्पत्ति और मृत्यु की प्रतिज्ञा पर विचार कर रहे हैं। वेदान्त दोनों का संबंध जोड़कर कहता है—जब मनुष्य मरता है तो मरने के समय उसकी अपूर्ण इच्छाओं का नाश नहीं होता। इसलिये, एक स्थान में विशेष कुछ स्पष्ट इच्छाओं से युक्त एक प्राणी पैदा होता है। उसकी ये इच्छायें 'शून्य' से तो आ नहीं सकतीं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जो इच्छायें किसी मनुष्य के साथ कब्र में तोप दी गई थीं वही इस घर में पैदा होने वाले इस नूतन जीव के साथ फिर प्रकट हुई हैं। यदि आप यह स्वीकार कर लेते हैं, तो आप इस भयंकर फंदे से बच जाते हैं कि कुछ तत्व 'शून्य' से लीन हो जाता है, और

'शून्य' से तत्व विशेष की उत्पत्ति होती है। हिन्दू इसे कर्म का विधान कहते हैं। इसे मान लेने से आप उस विकट कठिनाई से छूट जाते हैं और मृत्यु तथा जन्म का सम्पूर्ण व्यापार बिलकुल स्वाभाविक हो जाता है—ठीक प्रकृति के नियमों के अनुसार, विश्व के सामंजस्य पूर्ण सर्वसम्मत नियमों के अनुसार चलने लगता है।

इसके सिवा आप देखेंगे कि आप तर्क के एक दूसरे नियम से भी, इस कर्म-विधान को मानने के लिए वाध्य हैं। जिसे दार्शनिक लोग अपव्यय-अवरोधक नियम कहते हैं। उसका मंशा है कि जब कोई बात स्वाभाविक साधारण नियमों से समझायी जा सकती है, तब हमें अस्वाभाविक आनुमानिक और खींचातानी के तर्कों से काम न लेना चाहिए। कर्म का विधान इस समस्या की अत्यन्त स्वाभाविक, अत्यन्त स्पष्ट और अत्यन्त वैज्ञानिक व्याख्या करता है। इसकी तुलना में अन्य अनर्गल या लौकिक व्याख्याओं को आप क्यों ग्रहण करें।

यहां एक नई बात उठती है। वैज्ञानिक कहते हैं—ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, नवजात शिशुओं की विभिन्न प्रवृत्तियों की व्याख्या हम कर्म के विधान के द्वारा नहीं करेंगे, हमें इस समस्या के लिए कर्म के विधान का सहारा नहीं लेना चाहिए, यह तो वंश-परम्परा के नियम के द्वारा बड़ी आसानी से समझाया जा सकता है। वंश-परम्परा का नियम उन सारी बातों की व्याख्या कर देता है। यहाँ वेदान्त कहता है कि कर्म का विधान वंश-परम्परा के नियम के विरुद्ध नहीं है। कर्म का यह विधान तो वंशपरम्परा के नियम को अपने में सम्मिलित करके, उसे अंगीकार कर

उसकी भी व्याख्या कर देता है। इतना ही नहीं, कर्म का विधान वंशपरम्परा के नियम की व्याख्या करने के अति-रिक्त, मृत्यु के समय, मानसिक शक्तियों की प्रत्यक्ष हानि की भी व्याख्या कर देता है। वंश-परम्परा का नियम मृत्यु के समय होने वाली मानसिक शक्तियों की प्रत्यक्ष हानि की व्याख्या नहीं करता। इसलिए अकेले वंशपरम्परा के नियम की अपेक्षा समस्त वैज्ञानिकों और तत्ववेत्ताओं को इस कर्म विधान पर अधिक ध्यान देना चाहिए। कर्म का विधान वंशपरम्परा के नियम को किस प्रकार समझाता है? मनुष्य के मरने पर उसकी सब इच्छायें देखने में भले ही नष्ट हो जांय किन्तु वेदान्त कहता है कि उनका नाश नहीं होता। जैसे जब कि मोमबत्ती जलती होती है, तब बत्ती और मोम की हानि होती रहती है, प्रत्यक्ष हानि होती रहती है पर उस नियम से जिसे रासायनिक प्रीति कहते हैं दूसरे रूप में उसकी प्राप्ति भी होती रहती है, अर्थात् रासायनिक प्रीति के द्वारा कार्बन ओक्सीजन में मिल जाता है, हाइड्रोजन भी उसी प्रीति से ओक्सीजन में मिल जाता है। इसी तरह ये इच्छायें, ये मानसिक शक्तियां या मनुष्य का सूक्ष्म शरीर, मृत्यु के बाद, एक आध्यात्मिक संबंध के नियम से अथवा हम इसे एक विशेष प्रकार का भौतिक संबंध भी कह सकते हैं—मिल जाती हैं। और ये सम्पूर्ण सम्मिलित मानसिक शक्तियां उन देहों में खिंच जाती हैं, जहां की दशा और परिस्थिति, उनकी प्रकृति के अनुकूल उन्हें फलने-फूलने में सहायक और उनके विकास में [illegible] होती है। दूसरे शब्दों में तुम्हारी इच्छाओं का सम्मिलित [illegible] का योग-फल उस स्थान को खिंच जाता है जहाँ उसे अनुकूल भूमि

मिलती है, जहाँ तुम्हारी अविकसित शक्तियां तुम्हारी अपूर्ण इच्छायें फलवती हो सकेंगी, उनकी पूर्ति हो सकेगी।

इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति आप ही माता-पिता चुनता है। हम यह देखते हैं कि जब तक मनुष्य जिन्दा रहता है तब तक उसके हृदय में अनेक इच्छायें रहती हैं। उसकी अधिकांश इच्छायें इसी जीवन में पूरी हो जाती हैं, किन्तु कुछ पूरी नहीं होतीं। इन इच्छाओं का क्या होगा? क्या उनकी बिलकुल उपेक्षा कर दी जायगी, क्या वे नष्ट हो जायँगी? नहीं, नहीं। जब कली बाग में दिखाई देती है, तब उसके फूलने और खिलने की आशा भी की जाती है। कली से की आशा पूरी होती है, वह खिलती और फूलती है। हम यह भी देखते हैं कि चींटियों जैसे क्षुद्र जीवधारियों की भी इच्छायें पूर्ण होती हैं। तो फिर मनुष्य की इच्छायें ही क्यों मारी जाय? प्रकृति या ईश्वर द्वारा मनुष्य की ही हँसी क्यों उड़ायी जाय। मनुष्य उपहास के योग्य नहीं है। उसकी इच्छाओं का सफल होना भी आवश्यक है। हमारी अधिकांश इच्छायें इसी जीवन में फलती फूलती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि हमारी इच्छायें ही हमारे कार्यों में रूपान्तरित हो जाती हैं, इच्छायें ही प्रेरक शक्तियाँ हैं। किन्तु जो अनेक इच्छायें पूर्ण नहीं होतीं उनकी क्या गति होती है। वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य! तू ईश्वर द्वारा हँसे जाने के लिए नहीं बनाया गया है। तुम्हारी भी अपूर्ण और अतृप्त इच्छायें अवश्यमेव फलवती होंगी, यदि इस लोक में नहीं, तो दूसरे लोक में।

यहाँ एक प्रश्न और उपस्थित होता है। यदि इससे पूर्व हमारा कोई जीवन था, और यदि मृत्यु के बाद हमें फिर

जन्म लेना पड़ता है, तो फिर हमें पिछले जन्मों की याद क्यों नहीं रहती? वेदान्त पूछता है, स्मृति या स्मरणशक्ति क्या है? उदाहरण के लिए राम यहाँ तुमसे एक विदेशी भाषा में बोल रहा है। राम ने भारतवर्ष में कभी अंग्रेजी भाषा में व्याख्यान नहीं दिया। तुम लोगों से अँग्रेजी में बोलते समय मातृभाषा का एक भी शब्द राम के चित्त में नहीं आता। किन्तु क्या उसकी भारतीय मातृ भाषा कहीं खो गई है? नहीं। वह राम के पास ज्यों की त्यों है। यदि राम चाहे तो उसे तुरन्त ही संस्कृत, हिन्दी और उर्दू-फारसी आदि भारतीय भाषायें याद पड़ सकती हैं। अच्छा, तो स्मृति क्या है? तुम्हारा मन एक झील जैसा है। इस समय राम के मानसरोवर में भी भारतीय भाषायें, संस्कृत हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि इस झील की तह में बैठी हैं। बात की बात में हम इस झील को क्षुब्ध कर सकते हैं, और इन सब चीजों को ऊपरी तल पर ला सकते हैं, बस, यही किसी चीज को याद करना कहलाता है। तुम बहुत सी बातें जानते हो, परन्तु हर समय तुम्हें सबका चेत नहीं रहता। इसी तरह तुम अपने मन की झील को हिला डुला कर उनके संकेत पा सकते हो, उन्हें ऊपरी तल पर लाने से वे तुम्हारे चित्त या मस्तिष्क में आ जाती हैं।

इसी तरह वेदान्त कहता है, तुम्हारे सारे जन्म और पूर्व जीवन तुम्हारी चेतना की आन्तरिक झील में—तुम्हारे मन की आन्तरिक झील—विद्यमान रहते हैं। वे सदा रहते हैं। इस समय वे निम्नतम तट पर अवस्थित हैं। वे ऊपरी तल पर नहीं हैं। यदि तुम अपने पिछले जन्मों की याद करना चाहते हो, तो यह कोई कठिन बात नहीं है। इसके लिए-

सरोवर को खूब निम्नतम तह तक खलमला डालो और आप जो चीज चाहें उसे ऊपरी तल पर ला सकते हैं। यदि आप चाहें तो आप अपने पिछले जन्मों की भी याद कर सकते हैं; किन्तु एक बात है, ऐसा प्रयोग लाभ-दायक नहीं होता। क्योंकि एक दूसरे नियम–विकासवाद–के अनुसार तुम्हें आगे बढ़ना है, तुम्हें अग्रसर होते रहना है। इसलिए जो गया सो गया, उसकी क्या खबर करना। तुम्हारा उससे कोई सरोकार नहीं। तुम्हें तो आगे बढ़ना है।

फिर कर्म का विधान एक बात और बतलाता है, जिन चीजों में तुम्हें इतनी दिलचस्पी है, जिन्हें तुम इतना अधिक पसन्द करते हो, जिनसे तुम इतने आकृष्ट होते हो। जिन सबको तुम दुनिया में देखते हो, वेदान्त कहता है, कर्म विधान के अनुसार, तुम इन्हें पसन्द करते हो, तुम्हें इनसे दिलचस्पी है, तुम इन्हें प्यार करते हो, तुम इन्हें पहचानते हो, क्यों? केवल इसी कारण कि किसी समय तुम भी इन सब चीजों में होकर गुजर चुके हो, तुम चट्टानें थे, तुम चट्टानों में सो चुके हो, तुम नदियों में होकर बहे हो, तुम पौधों में उगे हो, तुम पशुओं में दौड़े हो, तुम अब उन सबको देखते और पहचानते हो। अब हम इसी बात को एक दूसरे तर्क से सिद्ध कर सकते हैं।

यह सुकरात, अधिकतर अफलातूं के तर्क का ही पहलू है। संस्मरण क्या है? संस्मरण से प्रतीत होता है कि जिस वस्तु को हम अभी याद कर रहे हैं उसे हम पहले से जानते थे। दृष्टान्त के लिए कल्पना करो कि दो मनुष्य एक साथ इन व्याख्यानों को सुनने आते रहे हैं, कभी न बिछुड़ने वाले जोड़े के रूप में। इस भवन में दिए हुए सात व्याख्यानों में

वे साथ साथ आये किन्तु आठवें व्याख्यान में केवल एक अकेला ही आया है, दूसरा नहीं आया है। बिछुड़े हुए अकेले मनुष्य से मित्रगण स्वभावतः यह प्रश्न करेंगे, तुम्हारा मित्र—तुम्हारा प्रिय मित्र आज कहाँ है? वह कहाँ गया है?" ऐसा प्रश्न क्यों किया जायगा? इसका हेतु है संस्मरण का नियम, जो संग या संयोग का नियम भी कहा जा सकता है। हम दोनों को सदा साथ साथ देखते आये हैं, दोनों हमारे इतने सुपरिचित हो गये हैं, कि दोनों, हमारे चित्त में, मानों एक हो गये हैं, दोनों संयुक्त हो गये हैं, इसीलिए बाद को जब हम उनमें से एक को देखते हैं तो वह हमें तुरन्त दूसरे की याद दिलाता है। इसी तरह पर हमारे मस्तिष्क में संग या संयोग का नियम काम करता है, जिससे हमें उसके साथी की याद आई। इस याद का अर्थ है कि हमें उस वस्तु की पहले से जानकारी थी जिसको हम अभी याद करते हैं।

यह एक क्रमबद्ध तर्क है। सब मनुष्य मरणशील हैं, शिवलाल मनुष्य है, अतएव वह मरणशील है। तुम्हारे सभी तर्क, तुम्हारी सभी युक्तियाँ, तुम्हारा सम्पूर्ण तर्क-शास्त्र इसी आधार, इन्हीं दो पूर्व-पक्षों पर अवलम्बित है—सब मनुष्य मरणशील हैं, शिवलाल एक मनुष्य है। केवल ये दो बातें कहिए, परिणाम रोक रखिए। तुरन्त संस्मरण की भाँति तुम्हारे चित्त में यह परिणाम—शिवलाल मरणशील है—उदित हो जायगा। यह परिणाम कैसे निकल आता है? अफलातूँ ने संस्मरण के नियम की व्याख्या की थी, क्या यह उसी नियम का फल नहीं है? है। एक तर्क में तीन बातें होती हैं। "सब मनुष्य मरणशील हैं," "शिवलाल एक मनुष्य है," अतः

"शिवलाल एक मरणशील है।" इनमें से दो बातें तुम्हारे सामने रक्खी गयीं, "सब मनुष्य मरणशील हैं," "शिवलाल एक मनुष्य है'। केवल दो पक्ष तुम्हारे सामने रक्खे गये थे, तुरन्त ही उस नियम के अनुसार जिसे दार्शनिक भाषा में विचार का नियम कहते हैं, तीसरा पक्ष तुम्हारे चित्त में चमक जाता है। हरेक व्यक्ति के चित्त में, हरेक की बुद्धि में यह निष्कर्ष अपने आप उठता है। ऐसा कैसे होता है। यह ठीक उसी तरह होता है, जैसे कि जब हम एक मित्र को देखते हैं तो हमें उस दूसरे साथी की याद अपने आप आ जाती है, जिसे हम सदा इस मित्र के साथ देखते रहे हैं। अच्छा, यह याद क्योंकर आती है, संस्मरण का यह नियम क्यों इतना स्वाभाविक है? विचार का यह नियम जिसके द्वारा इस प्रकार की याद आती है हरेक व्यक्ति, प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि में क्यों इतना बद्धमूल है? एक प्रकार की संस्मरण-क्रिया से। संस्मरण में पूर्वज्ञान का होना निहित रहता है। हरेक बच्चा जिसमें बुद्धि का विकास हो गया है, तर्क करने की योग्यता रखता है, हम हर एक बच्चे से तर्क कर सकते हैं। जब उसमें सोचने-विचारने की थोड़ी सी योग्यता आ जाती है, तब यदि हम उसके सामने यह तर्क रक्खें तो वह उसे मंजूर कर लेगा।

जब हम रेखागणित की कोई साध्य (Proposition) सिद्ध करते हैं तो हम शीघ्र ही निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं। यह निष्कर्ष हमें कैसे प्राप्त होता है—संस्मरण द्वारा। हरेक व्यक्ति और सभी मनुष्यों के मस्तिष्क में संस्मरण-प्रवृत्ति का बद्धमूल होना इस बात का समुचित प्रमाण है कि जो चीजें संस्मरण द्वारा तुम्हारे मस्तिष्क में फिर से संजीवित

हो जाती है, उससे तुम पहले ही से परिचित रहे होंगे। संस्मरण से जो वस्तुयें तुम्हारे मस्तिष्क में फिर से संजीवित होती है उनसे परिचित और अवगत होने के लिए यह जरूरी है कि किसी न किसी समय तुमने उन्हें सीखा या प्राप्त किया है। अब यह ज्ञान तुम्हें कहाँ से मिला? वेदान्त कहता है, किसी भूतपूर्व जन्म में।

अब एक और दूसरा प्रश्न सामने आता है। अच्छा, यदि हम स्वयं अपने भाग्य के विधाता हैं, तो हम में से कोई गरीब कैसे होना चाहेगा। अधिकांश गरीब क्या पैदा होते हैं? हम सब गरीब धनी पैदा होना चाहेंगे, हममें से कोई भी गरीब पैदा नहीं होना चाहता। फिर भी हममें से बहुतेरे गरीब पैदा होते हैं—अधिकांश। इसका क्या कारण है? वेदान्त उत्तर देता है, तुम्हें सब बातों को ठीक ठीक समुचित रीति से परखना चाहिए, उन्हें पूरी तरह अध्ययन करना चाहिए। अधूरे तत्वों पर विश्वास मत करो। तथ्यों पर सब पहलुओं से विचार करो। यह बात ठीक नहीं है कि हरेक व्यक्ति लंदन का नगरपति होना चाहता है और न प्रत्येक व्यक्ति लखपति ही होना चाहता है। देखिये—यह बात ठीक नहीं है। यहाँ एक मनुष्य है जो पाँच रुपये प्रति सप्ताह पाता है, उसकी अभिलाषा होती है कि सात रुपये प्रति सप्ताह की जगह मिल जाय। लंदन के नगर-पति होने का विचार, भाव उसके चित्त में कभी नहीं उठता। इस तरह तुम देख सकते हो कि हर एक व्यक्ति सचमुच लखपति होना चाहता है—यह बात ठीक नहीं है।

अब दूसरी दृष्टि से इस बात पर विचार कीजिये। लोगों की अभिलाषायें असंगत और विचारहीन होती हैं। वे अपनी

अभिलाषाओं को परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बनाते। वे अभिलाषाओं के गुलाम हो जाते हैं। वे अपनी इच्छाओं के स्वामी नहीं बनते, और इस प्रकार वे इच्छा न रहते हुए भी, अपनी ही इच्छाओं के द्वारा कठिनाइयों के चक्कर में पड़ जाते हैं, वे चिन्ता और विपत्ति में फंस जाते हैं।

अब आपमें से हरेक के लिए इस वार्तालाप का मनोरंजक अंश आता है। मान लो कि यहाँ एक मनुष्य है जो अपनी पाशविक वृत्तियों को तृप्त करना चाहता है। उसे विद्या या ज्ञान से कोई मतलब नहीं होता। वह आध्यात्मिकता, धर्म, सदाचार, यश और कीर्ति के झंझट में बिल्कुल नहीं पड़ना चाहता। वह ऐसी बातों से कोई मतलब नहीं रखना चाहता। उसे केवल अपनी पाशविक इच्छाओं, अपनी इन्द्रियों की वासनाओं को तृप्त करने से प्रयोजन रहता है। अब यह मनुष्य मरता है। (यहां अपनी बात को समझाने के लिए पशुवृत्ति-प्रधान व्यक्ति की कल्पना भर की गई है) बताइये, वह किस प्रकार के माता-पिता अपने लिए चुने? ऐसे मनुष्य, उसकी इच्छाओं के लिए यह आवश्यक नहीं कि विद्वान् माता-पिता के यहां उसका जन्म हो। जिस प्रकार की क्रिया-शक्ति उसमें है, उसे अपने अनुकूल भूमि के लिए बलवान माता-पिता की आवश्यकता नहीं है। इस क्रिया-शक्ति के लिए शिक्षित या सभ्य माता-पिता की आवश्यकता नहीं है। वेदान्त कहता है कि यदि ऐसा आदमी सचमुच पाशविक वृत्तियों का बना हुआ है, तो उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त और समुचित शरीर कुत्ते या सुअर का शरीर होगा, क्योंकि सुअर या कुत्ते की योनि ऐसी होती है जहां खाने-पीने की कोई रोक-टोक नहीं, जो पाशविक इच्छाओं

की वृद्धि से कभी थकती नहीं, ऐसी योनियों में जीव बेलगाम होकर मौज कर सकता है। अतः उसे इस प्रकार का शरीर मिलेगा। उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उसका सुअर या कुत्ते के रूप में पैदा होना अनिवार्य है। इस तरह आप देखेंगे कि कुत्ता या सुअर होने पर भी वह आप ही अपने भाग्य का स्वामी है।

इस दुनिया के लोग जब किसी चीज की इच्छा करते हैं, तो वे यह नहीं देखते कि उसका परिणाम क्या होगा, वे यह नहीं देखते कि इसके द्वारा वे कहां पहुँचेंगे। और बाद में जब वे अपनी इच्छाओं का फल भोगते हैं, तब वे रोना-धोना, चीखना और अपने भाग्य को कोसना शुरू कर देते हैं। वे ग्रहों को दोष देते हैं, कभी रोते और कभी दांत पीसते और ओंठ काटते हैं। इसलिए जब तुम कोई इच्छा करो, तब खूब समझ लो कि परिणाम क्या होगा। तुम स्वयं ही अपने ऊपर दुख और कष्ट बुलाते हो और दूसरा कोई उसके लिए उत्तरदायी नहीं।

राम अब आपको पूर्वीय भारत के एक कवि का किस्सा सुनायेगा। वह कवि मुसलमान था—बड़ा भला और बड़ा चतुर। एक शब्द में वह सुयोग्य और हाजिरजवाब था। वह एक देशी राजा के दरबार में रहता था। राजा उससे बड़ा स्नेह करता था। एक दिन रात में राजकुमार ने बड़ी देरतक उसे अपने साथ रक्खा। कवि तरह तरह की कवितायें, सरस कथायें और अत्यंत रोचक कहानियां सुना सुनाकर उसका मनोरंजन करता रहा। उस चतुर कवि ने यहां तक राजा को प्रसन्न किया कि वह शयनागार में जाना ही भूल गया। रानी ने राजकुमार से पूछा, आज सोने के लिए शयनागार

आने में इतनी देर कैसे हुई? राजा ने उत्तर दिया, "ओह, आज एक बड़ा ही विलक्षण पुरुष आया था, बड़ा ही मजेदार, रसिक, चतुर और हँसमुख।" फिर रानी ने कवि का और अधिक हाल पूछा। रानी के कौतुहल के कारण राजा को भी कवि की योग्यताओं और गुणों का इस प्रकार विस्तारपूर्वक वर्णन करने का अवसर मिला कि वे दोनों बहुत देर तक जागते रहे, यहां तक कि सोते समय सवेरा हो आया। रानी का कौतुहल चरम सीमा पर था। उसने राजा से प्रार्थना की कि किसी दिन उस रसिक कवि को मेरे महल में भी लाइये। दूसरे ही दिन वह रसिक कवि रानी के सामने लाया गया। आप जानते होंगे कि भारतवर्ष के रीति-रिवाज पाश्चात्य रीतियों से बिलकुल भिन्न हैं। भारत की स्त्रियाँ पृथक कमरों में रहती हैं और दूसरों से, पुरुषों से, बहुत मिलती जुलती नहीं। वे अलग रहती हैं, विशेषकर मुसलमान रमणियां। हिन्दु नारियों के विपरीत वे बड़ा बुरका पहनती हैं, अपने पति या किसी महात्मा, सच्चरित्र और शरीफ व्यक्ति के सिवा अन्य किसी के सामने मुँह नहीं खोलतीं। बादशाह इस शायर को रनिवास में, जनानखाने में ले गया। वहाँ उसने अपनी कवितायें पढ़ीं और कहानियाँ सुनाईं। महिलायें बहुत खुश हुईं। वहाँ कवि ने यह बतलाया कि वह अन्धा है, नेत्र के रोग से पीड़ित है। किन्तु वास्तव में वह अन्धा था नहीं। इसमें कवि का दुष्ट अभिप्राय यह था कि किसी प्रकार उसे रनिवास में रहने दिया जाय, कोई उस पर सन्देह न करे, और स्त्रियाँ उसे अन्धा समझ कर बिना संकोच उसके सामने निकलें और बातचीत करें, इस कमरे से उस कमरे में जाते हुए वे अपने चेहरों पर

कभी नकावें न डालें। और हुआ भी यही। उसे अन्धा समझ कर राजा ने उसे रनिवास में रहने की आज्ञा दे दी। किन्तु आप जानते हैं, सत्य छिपाया नहीं जा सकता।

सत्य छिपाया नहीं जा सकता—एक दिन वह अवश्य प्रकट होगा। एक दिन कवि ने किसी लौंडी से कोई चीज लाने के लिए कहा। आप जानते हैं कि भारतवर्ष में जो लोग तनिक धनी हो जाते हैं वे बड़े आलसी बन जाते हैं। आलस्य धन और वैभव का लक्षण माना जाता है। आप बड़े कुलीन हैं यदि स्वयं कुछ काम नहीं कर सकते। यदि नौकर की सहायता से आप गाड़ी में बैठते हों, तो आप बड़े भारी आदमी हैं। यदि कपड़े पहिनने में भी आपको किसी नौकर से सहायता लेनी पड़ती है, तो आप और भी श्रेष्ठ हैं। यदि चलने-फिरने में भी आपको एक नौकर का सहारा लेना पड़ता है तो आपकी श्रेष्ठता का क्या कहना! इस प्रकार वहाँ परावलम्बन प्रतिष्ठा का चिन्ह माना जाता है। और स्वाधीन और स्वावलंबन पराधीनता और दासत्व का लक्षण! अब इस कवि को राज्य-भवन में एक अच्छी जगह मिल गई तो अपनी जगह से उठकर किसी दूसरे मनमाने स्थान पर कुर्सी ले जाकर रखना। वह अपनी शान के ख़िलाफ़ समझने लगा। इसलिए एक दासी को उसने ऐसा करने की आज्ञा दी। किन्तु उसने कटुता से जवाब दिया—मुझे फ़ुरसत नहीं है, उसके बाद दूसरी दासी वहां आई। उसने भी अपने पास आने का संकेत किया। और कुर्सी हटा देने को कहा। वह बोली—कमरे में कोई कुर्सी नहीं है। फिर उसने कहा, "अच्छा, पानी का वह गिलास मेरे पास ले आओ।" उसने उत्तर दिया—एक भी गिलास इस कमरे में नहीं है। मैं

दूसरे कमरे से तुम्हारे लिए लाये देती हूँ। तब कवि बोल पड़ा–तुझे दिखाई नहीं पड़ता, एक गिलास तो वह रक्खा है।' अपना काम करा लेने की धुन में वह अपना अन्धापन भूल गया। यही हुआ करता है। इसी तरह पर सत्य झूठों से दिल्लगी करता है। आप जानते होंगे कि लेडी मैक्बैथ ने भी पाप किया था, परन्तु वह उसे छिपा न सकी। सत्य ने उसे विज्ञप्त कर दिया और अपने आप ही उसने डाक्टर से स्वीकार किया। यही हुआ करता है। यह कुदरत का कानून है। जब इस कवि ने कहा, "वहां रखा तो है, तुझे नहीं दिखाई देता?" तब दासी उसका काम करने के बदले तुरन्त दौड़ती हुई सीधी रानी साहिबा के पास पहुँची और सारा भेद खोल दिया, "देखिये तो! यह मनुष्य अन्धा नहीं है, यह बड़ा दुष्ट और पापी है, इसे घर से निकाल बाहर करना चाहिए।" वह घर से निकाल दिया गया, किन्तु लगभग तीन दिन के बाद ही सचमुच अन्धा हो गया। यह क्या बात हुई? किसने उसे अन्धा बना दिया। कर्म का विधान आप को बताता है कि वह मनुष्य अपनी ही मर्जी से अन्धा हुआ था। अपने भाग्य का वह आप ही विधाता था। उसकी अन्तरात्मा ने ही उसे अन्धा बना दिया। किसी दूसरे ने उसे नेत्रहीन नहीं किया, उसी की इच्छाओं ने उसे अन्धा बनाया। बाद में अन्धा होने पर उसने रोना-धोना मचाया, दांत पीसना और छाती पीटना शुरू किया।

एक आदमी भारी बोझ कंधों पर लिये जा रहा था। वह बुड्ढा और कमजोर था, ज्वर सा मालूम होने लगा, और गरमी के मारे बड़ा बेचैन हुआ। वह एक पेड़ की छाया में बैठ गया और कंधों से बोझ उतारकर कुछ देर तक

विश्राम करने लगा। दुख में उसने पुकारा—मौत ! आ जा, ऐ मौत। आ जा ! मेरा संकट हर ले: मुझे छुट्टी दे दे। कहानी आगे कहती है कि यमराज तुरन्त ही उसी ठौर उसके सामने प्रकट हो गये। जब उसने उनकी ओर देखा, तो बड़ा चकित हुआ, और थर थर कांपने लगा। कैसी भयानक मूर्ति, कैसी दानवाकार मूर्ति थी ! उसने यमराज से पूछा, "तुम कौन हो ?" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं वही हूँ जिसको तुमने याद किया था, तुमने अभी अभी मुझे बुलाया था, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने आया हूं।" तब तो बूढ़ा काँपने लगा, और बोला, "मैंने तुम्हें केवल इसलिए बुलाया था कि मेरा बोझा उठवा दो, उसे मेरे कंधों पर धर दो।"

लोग ऐसा ही करते हैं। तुम्हारी सारी कठिनाइयां, तुम्हारी सारी परेशानियां, यह सब जिसे तुम यातना कहते हो—सबको लाने वाला तुम्हारा अपना ही आप है। तुम अपने भाग्य के आप ही विधाता हो। जब इच्छित वस्तु सामने आती है, तब तुम रोना और झींखना शुरू करते हो। तुम स्वयं मृत्यु का आवाहन करते हो, और जब मृत्यु आती है तब तुम रोने लगते हो। किन्तु अन्यथा हो नहीं सकता। जब एक बार तुम नीलाम में सबसे ऊँची बोली बोल देते हो, तब तुम्हें चीज लेनी ही पड़ेगी। जब तुम घोड़े को दौड़ाते हो, तब गाड़ी उसके पीछे पीछे दौड़ेगी ही। इसलिए जब एक बार तुम इच्छा करते हो, तो तुम्हें परिणाम भोगना ही पड़ेगा। लोग सामान्यतः बुढ़ापे में मरते हैं और जवानी में बहुत कम मरते हैं—इसका क्या कारण है ? वेदान्त कहता है कि बूढ़े होने पर हमारे शरीर रोगी हो जाते हैं। बीमारी

हमें सताती है और तब हम मौत की इच्छा करने लगते हैं। हम संकट से छुटकारा चाहने लगते हैं, और छुटकारा हमारे सामने आता है। इस तरह आपकी मृत्यु आपही के द्वारा प्रकट होती है। वेदान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य आत्महन्ता है। मृत्यु उसी क्षण आती है, जब तुम उसके आने की इच्छा करते हो। कुछ लोग भरी जवानी में क्यों मर जाते हैं? इस समय शायद् आप राम की बात पर विश्वास न करेंगे, किन्तु यदि आप ठीक ठीक अवलोकन करेंगे तो आपको राम के इस कथन से सहमत होना पड़ेगा। राम ने बहुतेरों को चढ़ती जवानी में मरते देखा है। राम ने उनके निजी व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश किया, सारे मामले की जाँच-पड़ताल की, तो मालूम हुआ कि ये युवक दिलो-जान से मृत्यु के इच्छुक थे, अपनी परिस्थितियों के मारे परेशान थे, अपने वातावरण को बदलना चाहते थे। सदा ऐसी घटनाओं का रहस्य इसी प्रकार का होता है। अब प्रत्यक्ष उदाहरण देने के लिए समय नहीं रहा, परन्तु है यह एक तथ्य।

भारतवर्ष के किसी साम्प्रदायिक महाविद्यालय में एक होनहार युवक अध्यापक का काम करता था। एक सार्वजनिक सभा में उसने कहा कि मैं अपना जीवन इस सम्प्रदाय के निमित्त अर्पण कर दूँगा। उसने अपने आपको उसके प्रति अर्पण कर दिया। कुछ समय तक बड़ी सरगर्मी से वह वहाँ काम करता रहा किन्तु फिर उसकी राय बदली, उसके विचारों का प्रसार हुआ, उसका मस्तिष्क विस्तीर्ण हुआ, उसके विचार आगे बढ़े, उस सम्प्रदाय वालों के साथ मिल-जुल कर काम करना उसके लिए कठिन हो गया, वे सम्प्र-

हायबादी भी दिल ही दिल में जलने लगे। फिर भी उसे उन के साथ किसी तरह मिलकर काम करना पड़ता था, क्योंकि वह वचन दे चुका था, क्योंकि वह उस दल के प्रति अर्पण हो चुका था। इसलिए इस युवक के लिए छुटकारे का और कोई साधन न था। उसका मन तो दूसरी जगह था और तन दूसरी जगह, मन और तन भिन्न भिन्न हो गये थे। यह हालत कहाँ तक टिकती। विचारे की मृत्यु हो गई। मृत्यु के सिवा अन्य उपायों से वह अपनी अवस्था को नहीं बदल सकता था। मृत्यु उसे बचानेवाली सिद्ध हुई। इस तरह पर मौत भी हौवा नहीं है जैसा कि लोग समझते हैं।

तुम अपनी परिस्थितियों के स्वामी हो, आपही अपने भाग्य के निर्माता हो। फिर लोग दुःखी कैसे हो जाते हैं? हम पर मुसीबतें क्योंकर आती हैं? उत्तर—इच्छाओं के संघर्ष से। तुम्हें एक प्रकार की इच्छा होती है, जो तुमसे एक विशेष प्रकार का काम करवाती है और फिर तुम्हें दूसरी इच्छा होती है, जो तुमसे दूसरे प्रकार के काम कर-वाती है। दोनों इच्छायें मौजूद हैं। एक इच्छा तुम्हें लेखक, वक्ता, अध्यापक, व्याख्याता, या प्रचारक के पद पर आसीन करना चाहती है, साथ ही दूसरी प्रकार की इच्छा उत्पन्न होती है कि तुम इन्द्रियों के दास बने रहो। ये परस्पर विरोधी इच्छायें हैं, जो साथ साथ नहीं चल सकतीं। ऐसी हालत में क्या होता है? दोनों की पूर्ति आवश्यक है। जब कि एक की पूर्ति होती है तब दूसरी को ठेस पहुँचती है और तुम्हें व्यथा का अनुभव होता है। जब कि दूसरी की पूर्ति होती है तो पहली को ठेस पहुँचती है और तुम्हें दुःख होता है। इसी प्रकार लोग अपने आपको क्लेश में डालते रहते

हैं। तुम्हारी पीड़ायें भी यह प्रकट करती हैं कि तुम अपने भाग्य के आप ही स्वामी हो। अब एक बड़ी सुन्दर कहानी से राम इस बात का दृष्टान्त देगा—.

एक भारतवासी के दो स्त्रियां थीं। आप जानते हैं कि हिन्दू बहुविवाह में नहीं विश्वास करते, किन्तु मुसलमान उसे मानते हैं। यह मुसलमान था, उसके दो स्त्रियां थीं। उनमें से एक कोठे पर रहती थी और एक नीचे। एक दिन एक चोर घर में घुसा। वह सारा माल असबाब चुराना चाहता था, किन्तु घर के आदमी जाग रहे थे, और चोर को चुराने का कुछ भी अवसर हाथ नहीं लगा। सवेरा होते ही घर के लोगों ने चोर को देख लिया, और वे उसे पकड़कर मजिस्ट्रेट के सामने ले गये। कोई चीज चोरी नहीं गई थी, फिर भी चोर ने घर में सेंध तो लगाई ही थी। यह भी एक अपराध है। मजिस्ट्रट ने चोर से कुछ प्रश्न पूंछे। उसने तुरंत स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी करने की नियत से ही घर में सेंध लगाई थी। मजिस्ट्रेट उसे कुछ दंड देने ही वाला था कि वह मनुष्य बोला "जनाब, ! आप जो चाहे दण्ड मुझे दें, आप मुझे कारागार में भेज दें, आप मुझे कुत्तों के सामने फेक दें, आप मेरा शरीर को जलवा दें, किन्तु एक दण्ड मुझे न दीजियेगा।" मजिस्ट्रेट ने चकित होकर पूछा, 'कौन सा ?' मनुष्य ने उत्तर दिया, "मुझे दो स्त्रियों का पति कभी न बनाईयेगा। यह दंड मुझे कदापि न दीजियेगा।" यह क्यों ? तब चोर बताने लगा कि वह कैसे पकड़ा गया और उसे कोई वस्तु चुराने का अवसर क्योंकर नहीं मिला। उसने कहा कि सारी रात मकान के मालिक को जीने पर खड़ा रहना पड़ा, क्योंकि एक जोरू उसे ऊपर खींचती थी और

दूसरी उसे नीचे घसीटती थी। उसके सिर के बाल नुच गये और पैरों के मोज़े फट गये। सारी रात वह जाड़े के मारे काँपता रहा। बस, इसी कारण मैं न चुरा सका।

ऐसा ही होता है। तुम्हारे क्लेश और दुःख तुम्हारी परस्पर विरोधी इच्छाओं के कारण उत्पन्न होते हैं, तुम्हारी इच्छाओं में सामंजस्य नहीं होता। आप जानते हैं कि जिस घर में फूट होती है, वह नष्ट हो जाता है। इसलिए अपने दिलों को टटोलिये और देखिये कि वहां शान्ति है या नहीं। यदि आपका लक्ष्य एक होगा, आपके उद्देश्यों में एकता होगी तो आपको कोई कष्ट नहीं होगा, कोई व्यथा नहीं होगी। किन्तु यदि वहां विरोध और प्रतिकूल भाव रहेगा तो घर अवश्य गिर जायगा, आपको अवश्य अनेकों कष्ट भोगने पड़ेंगे।

तुम्हारी व्यथाओं का यही कारण है, आप स्वयं ही उनके लानेवाले हैं। आप अपने भाग्य के आप ही मालिक हैं। मनुष्य में निम्न आकांक्षायें भी होती हैं और उच्च भी। दोनों में लड़ाई होती रहती है। किन्तु विकास के सार्वभौम सिद्धान्त के अनुसार, इस झगड़े और टंटे में, योग्यतम ही विजयी होता है। योग्यतम की विजय प्रकृति को अभीष्ट है। इस प्रकार योग्यतम को विजय दिलाने वाले इस सार्वभौम विधान के सामंजस्य में, इस संसार में उन इच्छाओं की विजय होती है जो सबसे अधिक शक्तिशालिनी होती हैं। इनमें यह शक्ति कहाँ से आती है? शान्ति, सत्य से, और केवल सत्य से प्रकट होती है। केवल उन्हीं इच्छाओं की जीत होती है जिनमें सत्य, सदाचार, न्याय, पुण्यशीलता या शुद्धता की मात्रा अधिक होती है। तुम्हें संगीन की नोक पर,

आंड़े की धार पर उन्नति और सुधार करना पड़ेगा। तुम सदा विषयभोग में लिप्त होकर सड़ नहीं सकते। सदा स्वार्थ-पूर्ण तृष्णा और लोभ में तृप्त नहीं रह सकते। तुम्हें उठना होगा, धीरे धीरे किन्तु निश्चयपूर्वक। तुम्हारे सामने आनंद का पथ खुला हुआ है। यहां कर्म का विधान हरेक के लिए उसके लिए आनन्द लिये खड़ा है।

इच्छाओं की पूर्ति क्यों आवश्यक है? वेदान्त कहता है तुम्हारी असली प्रकृति, तुम्हारा असली आत्मा अजर-अमर है। राम अविनाशी, परमेश्वर है। अतः तुम्हारी इच्छायें, तुम्हारा तन, और मन सत्य के महासमुद्र में, नित्यता के महासागर में लहरों और तरंगों जैसा होने के कारण उसी तत्त्व के स्वभावानुकूल बन जाता है, जिससे वे बनते हैं। सत्यनारायण, परमात्मा या आत्मा दुनिया को अपनी श्वास के रूप में बनाता है। संसार मेरी सांस है। पलक मारते ही मैं सृष्टि की रचना करता हूँ। पलक मारते ही दुनिया की सृष्टि हो जाती है। मैं तुम्हारी आत्मा हूँ। हमारी इच्छाओं में परमात्मा का और उसके साथ में तुच्छ अहंकार का भाव मिला जुला रहता है। इच्छाओं का वह पहलू जो आन्तरिक परमेश्वरत्व या अमरत्व पर निर्भर है इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रेरित करता है और इच्छाओं के वे अंश जो माया पर अवलम्बित हैं इच्छाओं की पूर्ति में विलम्ब लगाते हैं। तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति में जो देर होती है उसका कारण तुम्हारी इच्छाओं का माया-तत्त्व है, और तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति की असंदिग्धता, निश्चय का हेतु तुम्हारी इच्छाओं की आन्तरिक दैवी प्रकृति है। आप यहां पूछ सकते हैं कि हमारी इच्छायें दैवी या ईश्वरीय क्योंकर होती

है ? इच्छा-मात्र प्रेम के सिवा और कुछ नहीं है, और प्रेम ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं है। क्या प्रेम ईश्वर नहीं है? इच्छायें उसी प्रकार की होती हैं जैसी कि आकर्षण-शक्ति। आकर्षण-शक्ति क्या है? एक ओर पृथिवी चन्द्रमा को आकर्षित कर रही है। दूसरी ओर सूर्य पृथिवी को अपनी ओर खींच रहा है। सभी ग्रह एक दूसरे को अपनी ओर खींच रहे हैं—'सार्वभौमिक प्रेम' यही प्रीति या साम्यता का नियम है। हर एक अणु परस्पर एक दूसरे को अपनी ओर खींच रहा है। परमाणुओं में संसक्ति या संलग्नता की प्रवृत्ति क्या है? एक परमाणु दूसरे परमाणु को खींच रहा है: यही आकर्षण की प्रवृत्ति तुम्हारे स्थिति बिन्दु से इच्छा का स्वरूप है। यह आकर्षण, यह शक्ति, यह संसक्ति, यह संलग्नता, यह रासायनिक घनत्व और आकर्षण क्यों होता है? यह सब इच्छा का प्रसार है। तुम्हारी इच्छायें दैवी या ईश्वरीय होती हैं। इसीलिए तुम्हारी इच्छाओं का ईश्वरीय स्वभाव उनकी पूर्ति का आग्रह करता है। किन्तु जब तुम स्वार्थपूर्ण अथवा व्यक्तिगत हो जाते हो, तब उनका स्वार्थपन उनको माया के स्वभाव का बना देता है और इस कारण उनकी पूर्ति में देर लगती है।

तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति सरलता और निर्विघ्नता-पूर्वक हो, वे पूर्ण संतुष्टि के साथ सफल हों; इसके लिए तुम्हें अपनी इच्छाओं के माया-स्वभाव को घटाना होगा, तुम्हें अपनी इच्छाओं की ईश्वरीय या निस्वार्थ-प्रकृति को प्रधानता देनी होगी, तब वे फलवती होंगी।

अब राम एक कविता पढ़कर इस विषय को समाप्त करता है। एक बार अनुभव करो कि तुम स्वयं अपने भाग्य

विधाता हो, फिर देखो तुम कितने सुखी होते हो। जब तुम ॐ जपते हो, और जब तुम यह भान करते हो कि अपने भाग्य के तुम आप ही स्वामी हो तब रोने-झीखने और दुखी होने की कोई जरूरत नही रह जाती। तुमने अपनी अवस्था ऐसी बनायी है। अपनी 'प्रभुता' की उपलब्धि करो। अपने आप को परिस्थति का गुलाम मत समझो, इस सत्य को पहचानो, इस सत्य का अनुभव करो कि तुम अपने भाग्य के आप विधाता हो। और तुम चाहे जिस दशा में हो, वातावरण कुछ भी हो, देह चाहे कारागार में डाल दी जाय अथवा तेज धारा में बहा दी जाय, या किसी के पैरों तले कुचली जाय, याद रक्खो, "मैं ईश्वर हूँ" जो सारी अवस्थाओं का स्वामी है, मैं देह नहीं हूँ, मैं वह हूँ, भाग्य का विधाता।" तुम्हारे मित्र स्वयं तुम्हारे द्वारा प्रकट होते हैं, जिनको तुम मित्र कहते हो उनको तुम्हारी इच्छा तुम्हारे पास ला देती है। जिनको तुम शत्रु कहते हो उनको भी इच्छा ही तुम्हारे सामने खड़ा कर देती है। ऐ शत्रुओ! मैंने तुम्हें बनाया है, ऐ मित्रों! तुम भी मेरी कृति हो। इस संकल्प का अनुभव करो, और इसको हृदयगम करो और फिर देखो कि तुम कितने सुखी हो जाते हो।

Oh, brimful is my cup of joy,
Fulfilled completely all desires
Sweet morning's zephyrs I employ;
'Tis I in bloom their kiss admires,
The rainbow colours are my attires,
My errands run like lightning fires,
The smiles of roses, the pearls of dew,

The golden threads, so fresh, so new,
All sun's bright rays, embalmed in sweetness.
The silvery moon, delicious neatness.
The playful ripples, waving trees,
Entwining creepers, humming bees,
Are my expression, my balmy breath,
My respiration is life and death,
What shall I do, or where remove?
I fill all space, no room to move.
Shall I suspect or I desire?
All time is me, all force my fire,
Can I be doubt or sorrow striken?
No, I am verily all causation.
All time is now, all distance here,
All problems, solved, solution clear
All ill and good, all bitter and sweet
In those my throbbing pulse doth beat
All lovers I am, all sweet hearts I,
I am desires, emotions I.
No selfish aim; no tie, no bond,
To me do each and all respond,
Impersonal Lord in foe and friend,
To me doth every object bend.
ओ, मेरे हर्ष का प्याला है, लबालब भरा हुआ
सब इच्छायें बिलकुल पूर्ण हैं,
मधुर प्रभात की मंदवायु मेरी चेरी है,
मैं ही उसके प्रसार में उसके चुम्बन का मजा लेता हूँ.
और इन्द्रधनुष के रंग हैं मेरे वस्त्र,

विद्युत मेरे संदेशवाहक दूत अग्नि की भाँति दौड़ने वाले,
गुलाब की मुसक्यान, ओस के मोती,
सूर्य की चमकीली किरणें, सब मधुरता में लिपटी हुई,
रुपहला चाँद, मीठी मीठी स्वच्छता,
खेलभरी तरंगें, लहलहाते वृक्ष,
अंकधारिणी लतायें, भनभनाते भौंरे,
हैं मेरे प्रकाशन, मेरी सुगंधित श्वांस,
जीवन और मृत्यु है मेरा श्वासोच्छ्‌वास।
क्या मैं करूँ, और कहाँ हटूँ ?
मैं ही सम्पूर्ण स्थान को भरे हूँ, कहीं सरकने की जगह नहीं।
क्या मैं सन्देह करूँ और क्या इच्छा करूँ ?
सारा समय मेरा है, सारी शक्ति मेरी अग्नि है।
क्या मैं सन्देह या शोक पीड़ित हो सकता हूँ ?
नहीं, मैं तो सचमुच हेतु मात्र हूँ,
सब काल अब है, सब अन्तर यहाँ,
सब समस्यायें हल हैं, सुलझाव स्पष्ट है।
सारा बुरा भला, कड़वा और मीठा।
उनमें चलती है मेरी फड़कती नाड़ी।
मैं ही प्रेमी हूँ, मैं ही प्रियतम
मैं ही इच्छायें, मैं ही भावनायें।
कोई स्वार्थपूर्ण लक्ष्य नहीं, न कोई संबंध, न कोई बन्धन,
हरेक और सब मेरे प्रति उत्तरदायी,
निराकार स्वामी, शत्रु और मित्र मैं,
हरेक पदार्थ करता है मुझे शत शत प्रणाम !

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

मृत्यु के वाद

अथवा

सब धर्मों की संगति

२५ जनवरी १९०३ को गोल्डेन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में अमर और सब धर्मों के आदर्शरूप आत्मन्!

इस हाल में अभी तक जो व्याख्यान दिये गये हैं वे बहुत कठिन थे, उनके विषय कुछ नीरस और गूढ़ थे। किन्तु आज का भाषण अपेक्षाकृत सरल है।

कुछ वर्ष पूर्व जब राम भारतवर्ष में था, तब उसके हाथ एक पुस्तक लगी जो एक रेवरेंड डाक्टर, एक अमेरिकन सज्जन, भारत के एक विश्वविद्यालय के अध्यापक ने लिखी थी। इस पुस्तक का विषय था "मृत्यु के उपरान्त"। उसमें बड़े ही सुन्दर रूपक द्वारा दिखलाया गया था कि यह दुनिया एक स्टेशन के समान है और परलोक यानी अपर सागर के उस पार दूसरे स्टेशन के समान है और सागर के उस पार जाने वालों को टिकट खरीदना पड़ता है, जिनके पास ठीक प्रकार के टिकट नहीं होते, वे जहाज पर से नीचे गहरे गर्त में फेंक दिये जाते हैं। और जिनके पास ठीक तरह के टिकट होते हैं, वे ठिकाने पर पहुंचा दिये जाते हैं। टिकट कई तरह के होते हैं, पहला दर्जा, दूसरा दर्जा, तीसरा दर्जा,

इत्यादि। फिर कुछ नकली टिकट भी होते हैं। जैसे सफेद, काले, पीले, हरे, आदि। किन्तु ठीक तरह के टिकट, जो तुमको ठिकाने पर पहुँचावेंगे, लाल होते हैं, क्योंकि वे ईसा के खून से रंगे होते हैं। जिनके पास ऐसे टिकट होंगे सिर्फ वही सफलतापूर्वक ठिकाने पर पहुँचने पावेंगे, दूसरे कदापि, कदापि नहीं जा सकते। सफेद, काले, पीले, तथा अन्य प्रकारों के टिकट मानो दूसरे धर्मों के टिकट हैं, और लाल टिकट जिसमें ईसामसीह का रक्त लगा हुआ है ईसाई धर्म के टिकट हैं। यही पुस्तक का विषय था और बड़ी सुंदरता से उपस्थित किया गया था। रेवरेंड डाक्टर ने अपनी सम्पूर्ण योग्यता और अँग्रेजी साहित्य का अपना विशाल ज्ञान मानो इस पुस्तक के लिखने में लुटा सा दिया था।

केवल ईसाईयों का ही नहीं, दूसरे धर्मों के लोगों का भी, कुछ कुछ ऐसा ही विश्वास है। मुसलमान कहते हैं कि मृत्यु के बाद, टिकट कलक्टर, सर्वोच्च स्टेशन मास्टर या हिसाब निरीक्षक हजरत मुहम्मद हैं, और जिनके पास हजरत मुहम्मद का चिन्ह न होगा, वे नरक में डाले जायँगे। दूसरे धर्मों के भी कुछ ऐसे ही विचार हैं। वे सब कहते हैं कि सब मनुष्य मरने के बाद चाहे कहीं के भी—अमेरिका, यूरोप, अफरीका, आस्ट्रेलिया या एशिया के रहनेवाले हों, भुगतान के लिए एक मनुष्य के हवाले कर दिये जायँगे, चाहे वह ईसा हो, चाहे मुहम्मद, चाहे बुद्ध, चाहे जोरोस्टर, कृष्ण, या कोई अन्य व्यक्ति। यही संसार के धर्मों में झगड़े, वाद-विवादों और संघर्षों का मूल कारण है। यही अन्ध विश्वास, यह दर्पपूर्ण विचार संसार में अधिकांशतः उस रक्तपात का कारण हुआ है, जो धर्म के नाम पर बहाया गया है।

अब इस विषय पर वेदान्त-दर्शन का विचार आपके सामने रक्खा जायगा। वेदान्त इन सब धर्मों का समन्वय करता है, और कहता है कि आपका मन दूसरे धर्मों के अधिकारों में दस्तन्दाज़ी किये बिना ही ठीक हो सकता है। आपके ठीक होने के लिए यह जरूरी नहीं कि आप अपने भाइयों को गलत समझें। यह एक बहुत बड़ा विषय है, और एकाध घंटे के थोड़े से समय में वेदान्त दर्शन की व्याख्या के अनुसार हम इस विषय के केवल मुख्य मुख्य पहलुओं पर ही विचार कर सकते हैं।

संसार में जितनी उन्नति हो रही है वह सब एक सौंदर्य-पूर्ण रेखा के रूप में हो रही है। विश्व का सारा विकास और उन्नति एक तालबद्ध रेखा में हो रही है। संसार के सारे आन्दोलन और स्फुरण स्वरबद्ध हैं। चढ़ाव और उतार ऊँचे उठना और नीचे गिरना भी एक नियमबद्ध क्रम में हो रहा है। जैसा कि गणित विद्या से प्रकट होता है कि प्रत्येक अधिकतम के लिये एक न्यूनतम होना भी जरूरी है। अधिकतम और न्यूनतम बिन्दु बारी बारी से हमारे सामने आते हैं। दिन और रात में भी हमारी गति तालबद्ध है। जब हमें चलना होता है, तब पहले एक पैर उठाते हैं और फिर दूसरा। वर्ष की ऋतुयें निश्चित क्रम में एक दूसरी के बाद आती हैं। यही ऋतुयें बार बार होती हैं, इसे काल-चक्र गति अथवा मौसम कहते हैं। इस संसार में सर्वत्र सामयिक गति है। नित्य तुम जागते हो और सोते हो, नित्य सोते हो और जागते हो। जिस प्रकार सोना और जागना ठीक क्रमपूर्वक एक दूसरे के बाद होता है, उसी प्रकार वेदान्त के अनुसार, जीवन और मरण, मरण और जीवन

औ ठीक एक बँधे क्रम से एक दूसरे का अनुगमन करते हैं। इस सम्पूर्ण विश्व में किसी भी स्थान पर यकायक रुकाव कहीं नहीं देखा जाता। कालचक्र क्या कभी रुकता है? कभी नहीं। क्या आप जानते हैं कि समय कब से शुरू हुआ? क्या देश की कहीं सीमा है? नहीं। इनका अन्त नहीं है। क्या नदियाँ कभी रुकती हैं? आप कहेंगे वे रुकती हैं। किन्तु नहीं, वे नहीं रुकतीं। जो नदियाँ समुद्र में गिरती हैं, वे भाप के रूप में ऊपर उठती हैं, और फिर लौट कर पहाड़ों को जाती हैं, और फिर वह कर समुद्र में पहुँचती हैं, और समुद्र से फिर लौट कर पहाड़ों पर जाती हैं। यही चक्र चलता रहता है। मान लो, यहाँ एक मोमबत्ती है। एकाध घंटे में वह जल जाती है, बत्ती और सब कुछ। तुम कहते हो, वह मर गई। किंतु नहीं, वह मरती नहीं। रसायन विद्या हमें बताती है कि वह नहीं मरती। उसका केवल रूपान्तर हो जाता है। उससे उत्पन्न होनेवाले कार्बन डायोक्साइड गैस और जलअंश फिर उद्भिज् पदार्थों में, वनस्पतियों में प्रकट होते हैं। तात्पर्य यह, यहाँ कुछ भी मरता नहीं। दुनिया की सारी प्रगति एक चक्र में या गोलाकार होती है। देखो, तुम जिन्दा हो, फिर मरोगे। क्या मृत्यु के बाद की तुम्हारी दशा सदा वैसी बनी रहेगी? तुम्हें ऐसा कहने का कोई अधिकार नहीं। ऐसा कहना प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है। यदि तुम कहते हो कि मृत्यु के बाद केवल अनन्त नरक भोग है और जीवन बिलकुल नहीं होता, तो तुम संसार का संचालन करनेवाले अत्यन्त कठोर नियमों की अवज्ञा शुरू कर देते हो। तुम्हें ऐसी बात कहने का कोई अधिकार नहीं है। मरने के बाद मनुष्य को यदि परमेश्वर

सदा के लिए नरक में डाल देता है, तो ऐसा परमेश्वर सच-मुच बड़ा निर्दयी होगा। एक मनुष्य ७०-८० साल की ज़िंदगी टेर करके मर जाता है। बिचारे को ठीक प्रकार की शिक्षा पाने का अवसर कभी नहीं मिला, अपनी उन्नति के उचित उपाय उसके हाथ नहीं लगे। दीन माता-पिता के घर में उसका जन्म हुआ था, वे उसे शिक्षा नहीं दे सके, वे उसे किसी देव-स्थान और धर्म्म-सम्प्रदाय में नहीं ले जा सके, इस प्रकार वह बिचारा मर गया। इसे ईसा के रक्त से रञ्जित टिकट कभी प्राप्त नहीं हुआ। अब यह मनुष्य सदा के लिए नरक में डाल दिया जायगा? ओहो! यदि परमेश्वर ऐसा करे तो क्या वह अत्यन्त प्रतिहिंसा-परायण न कहा जायगा? न्यायानुसार तुम्हें ऐसी बात कहने का कोई अधिकार नहीं। वेदान्त के अनुसार, मर जाने के बाद मनुष्य सदा मुर्दा ही नहीं बना रहना, यह आवश्यक नहीं। मृत्यु के बाद जीवन है, और जीवन के बाद मृत्यु। वास्तव में मृत्यु एक नाम मात्र है। मृत्यु का अर्थ है केवल रूपान्तरित हो जाना, इससे अधिक वह कुछ नहीं। उसे बड़ा जूजू मानना भारी भूल है। उसमें भीषणता या भयानकता कुछ भी नहीं है, वह तो एक दशा का परिवर्तनमात्र है।

अच्छा, जितने दिनों तुम इस दुनिया में जीवित रहते हो, ७० साल या ८० साल, तब तक तुम एक दीर्घ, अति दीर्घ जाग्रत अवस्था का उपयोग करते हो। इस दुनिया का जीवन एक दीर्घ, चिरकाल तक चलनेवाली जाग्रत अवस्था है। जीवन के बाद यह नाम मात्र की मृत्यु वेदान्त के मत से उतनी ही लम्बी—एक सुदीर्घ निद्रा है। वेदान्त के अनुसार 'मृत्यु' एक दीर्घ निद्रा मात्र है। जिस तरह दिन के चौबीस घंटों

में लगभग तीन या चार घंटे की निद्रा का उपभोग करने के बाद तुम फिर जाग उठते हो, उसी तरह मृत्यु का विश्राम भोगने के बाद तुम्हें फिर इस दुनिया में जन्म लेना पड़ता है, तुम फिर अवतीर्ण होते या जन्म लेते हो। पुनर्जन्म या फिर देह धारण करना ऐसा है जैसे झपकी लेने के बाद हम फिर जाग उठते हैं।

वेदान्त के अनुसार, मर जाने के बाद मनुष्य तुरन्त उसी क्षण पुनर्जन्म नहीं लेता। जब बीज पेड़ से गिरता है तो उससे तुरन्त नया पेड़ नहीं उग आता, उसमें कुछ देर लगती है। जब मनुष्य एक घर छोड़ता है, तब वह तुरन्त दूसरे घर में प्रवेश नहीं करता, उसमें उसे कुछ समय लगता है। इसी तरह मरने के बाद मनुष्य तुरन्त दूसरी देह नहीं धारण करता। उसे एक मध्यवर्ती स्थिति से होकर गुजरना पड़ता है, जिसे हम 'मृत्यु' की दशा या दीर्घ निद्रा की दशा कहते हैं। अब इस दशा का पता लगाइये? यह दशा अर्थात् मृत्यु और दूसरे जन्म के बीच की दशा किस प्रकार की होती है? यह निद्रा की अवस्था है और इसमें निद्रा के सभी गुण विद्यमान हैं। आप जानते हैं कि जब कोई मनुष्य सो जाता है, तब स्वप्न में वह उसी प्रकार की चीजें देखता है जैसी उसने अपनी जाग्रतावस्था में देखी होती हैं। यह साधारण नियम है। कभी कभी इसके अपवाद भी देखने में आते हैं, किन्तु साधारणतः मनुष्य स्वप्नों में उसी प्रकार की चीजें देखता है जैसी वह अपनी जाग्रत अवस्था में देखता रहता है। जो लोग विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं के लिए पढ़ते हैं, वे राम के इस कथन का अनुमोदन करेंगे, कि जब उनकी परीक्षा निकट आती जाती है और वे बड़े यत्न से

परीक्षा की तैयारी करते हैं, तब उन्हें अपने स्वप्नों में प्रायः उसी प्रकार की बातें दिखाई पड़ती हैं और वे उसी तरह के काम करते रहते हैं जिनमें वे प्रायः दिन में लगे रहते हैं। जब उनकी परीक्षा समाप्त हो जाती है और वे परिणाम की आशा लगाये हुए इच्छा करते रहते हैं कि वे उत्तीर्ण हों, एवम् सफल उपाधिधारियों की सूची में सर्वप्रथम हों, तब उन दिनों में जब वे ऐसे सन्देह की दशा में होते हैं, तब वे प्रायः परीक्षा के परिणामों के सम्बन्ध में स्वप्न देखा करते हैं। जो लोग किसी विषय विशेष या पदार्थ विशेष से प्रेम करते हैं, वे रात को अवश्य ही उसके स्वप्न देखते हैं।

राम जब विद्यार्थी था और बी० ए० परीक्षा की तैयारी कर रहा था, तब उसका एक सहपाठी राम के साथ ही कमरे में रहता था। वह बड़ा खिलाड़ी था। नाचने-गाने, और खेलने में ही वह अपना समय बिता देता था, एक दिन एक सज्जन ने इस मित्र से पूछा कि पढ़ने-लिखने में तुम कितने घंटे लगाते हो। उसने मुस्कराते हुए कहा—"पूरे १८ घंटे।" मित्र ने कहा—"सरासर झूठ! तुम चार या पाँच घंटे तो मेरी उपस्थिति में नष्ट करते हो, मैं स्वयं देखता हूं। और तुम दिन में ८ या ९ घंटे सोते हो, तब तो केवल १० या १२ घंटे शेष बचते हैं, फिर भी तुम कहते हो कि मैं पूरे १८ घंटे पढ़ता हूं।" युवक ने कहा, "आपने अभी गणित पढ़ा नहीं। मैं सिद्ध कर सकता हूं कि मैं पूरे १८ घंटे पढ़ता हूं।" उस सज्जन ने कहा, "भला, वह कैसे?" नवयुवक बोला—मैं और वह राम एक ही कमरे में रहते हैं। मैं वास्तव में १२ घंटे पढ़ता हूं, और वह राम २४ घंटे पढ़ता है। कुल ३६ घंटे हुए। तब औसत निकालो, १८ राम के हिस्से के हुए

और १८ मेरे हिस्से के।" भद्रपुरुष ने कहा, "अच्छा, माना कि तुम १२ घंटे पढ़ते हो, परन्तु मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि राम चौवीसों घंटे पढ़ता है। यह कैसे संभव है? मैं जानता हूँ कि राम बड़ा मेहनती विद्यार्थी है, मैं जानता हूँ कि वह अनेक विषयों का अध्ययन कर रहा है, वह केवल विश्वविद्यालय ही का कार्य नहीं करता, वरन् चौगुने अन्य काम भी करता है, माना वह अन्य अनेक विषय तैयार कर रहा है, और सब तरह के कार्य करता है, फिर भी प्रकृति के नियम उसे २४ घंटे कैसे काम करने देंगे।" इस सहपाठी ने समझाना शुरू किया। उसने कहा, "मैं तुम्हें दिखा सकता हूँ कि जब वह भोजन करता है तब भी वह अपने चित्त को एक क्षण भी विश्राम नहीं लेने देता। मैं तुम्हें दिखा सकता हूँ कि हर समय उसके पास एक कागज रहता है जिस पर कोई न कोई वैज्ञानिक समस्या विचार के लिए रहती है, कोई गणित या दर्शन का विषय होता है, अथवा कोई पुस्तक या कविता कंठ करने के लिए रहती है। वह चाहे कोई कविता लिखे या दूसरे किसी प्रकार का काम करे, वह एक क्षण भी नष्ट नहीं करता—यहाँ तक भोजन के समय भी कुछ न कुछ करता रहता है। जब वह कपड़े पहनने के कमरे में जाता है, तब वहाँ खरिया से दीवाल पर आकृतियाँ ही खींचता रहता है। जब सोता है तब भी किसी न किसी समस्या को हल करता रहता है, वह सदा उन्हीं विषयों का स्वप्न देखता है जिनमें उसका चित्त दिन में लगा रहता है। इस प्रकार उसके चौवीसों घंटे पढ़ने में बीतते हैं।

निस्संदेह उसके कथन में कुछ सत्यता थी। जो मनुष्य अपने पूरे १८ घंटे अध्ययन में लगाता है, वह स्वप्नों में भी

वही काम करेगा जो दिन में करता रहता है, दूसरी बात यह सोच ही नहीं सकता। कभी कभी लोग कहते हैं कि वे अपने स्वप्नों में ऐसी चीजें देखते हैं जो पहले कभी देखने में नहीं आई थीं। वेदान्त कहता है, "नहीं, ऐसा नहीं होता।" एक मनुष्य आता है और कहता है कि मैंने कल स्वप्न में एक दानव देखा था। उसका सिर सिंह जैसा था, पीठ ऊँट की थी, दुम साँप की थी, पैर मेढ़क जैसे थे। वह कहता है कि पहले कभी मैंने ऐसा पशु नहीं देखा था। वेदान्त उससे कहता है—भाई! तुमने मनुष्य देखा है तुमने सर्प देखा है, तुमने ऊँट देखा है, तुमने मेढ़क देखे हैं। बस, सांप की दुम, सिंह के सिर, ऊँट की पीठ तथा मेंढ़क के पैरों को तुमने अपने स्वप्न में एकाकार करके एक नये पदार्थ की रचना कर डाली है। सो वास्तव में हरेक वस्तु जो तुम स्वप्न में देखते हो, यहाँ तक नये नये प्रकार के दानव रूप पशु भी तुम जाग्रत अवस्था में देख चुके हो।"

जो मनुष्य पहले कभी रूस नहीं गया, जिसने कभी वहाँ का हाल नहीं सुना, वह स्वप्न में कभी सेंटपीटर्सबर्ग (रूस की राजधानी) नहीं पहुँचता। कभी नहीं, ऐसा कभी नहीं होता। कभी कोई तत्त्ववेत्ता स्वप्न में चमार का काम नहीं करता! वह मोची का पड़ोसी भी हो और मोची को प्रायः अपने स्वप्नों में देखता भी हो, तो भी अपने को जूते टांकने के काम में लगा हुआ कभी नहीं देखता।

जब यह तथ्य है, तब मृत्यु रूपी दीर्घ निद्रा में आपको क्या आशा करनी चाहिए? मृत्यु और अगले जन्म के बीच का काल, दीर्घ निद्रा का समय, कैसे बीतेगा? वेदान्त कहता है: यह तुम्हारे स्वप्नों और स्वप्नों में बीतेगा। वह तुम्हारे

वैकुंठ धामों और रौरव नरकों में बीतेगा। ये वैकुंठ, ये स्वर्ग और नरक क्या हैं? ये मृत्यु और भविष्यकालीन जन्म के बीच में पड़नेवाले स्वप्नलोक हैं। एक मनुष्य सच्चा ईसाई है, इसने बड़ा ही साधु और धार्मिक जीवन बिताया है, प्रत्येक रविवार को गिर्जाघर जाता रहा है, नित्य सायं को प्रार्थना करता रहा है। भोजन करते समय इसने ईश्वर से कल्याण की प्रार्थना की है, आजीवन ईसा की सूली अपनी छाती पर लगाये रहा है, जन्म से मृत्यु पर्यन्त जितनी देर जागा है, बराबर ईसा का ध्यान किया है, उठते-बैठते, सोते-जागते, हर घड़ी ईसा की पवित्र मूर्ति इसके सामने उपस्थित रही है। इसने ८०, ६० साल की लम्बी जाग्रत अवस्था को ईसा के प्रेम में लगाया है। इसका सारा जीवन ईसा के चिन्तन में बीता है। यह जीवन भर मृत्यु के बाद ईसामसीह के दक्षिण पार्श्व में बैठने की आशा लगाये रहा है, अपनी सारी जिन्दगी यही सोचता और स्वप्न देखता रहा है कि मृत्यु के बाद फरिश्ते, देवदूत और स्वर्गीय देव मेरा स्वागत करेंगे। भला, मृत्यु के अनन्तर उसकी कैसी स्थिति हो सकती है? वेदान्त के अनुसार, इस प्रकार का पक्का ईसाई मृत्यु के बाद अपने को ईसा के दाहिने पार्श्व में बैठा हुआ पावेगा। इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं! वह मृत्यु के उपरान्त अर्थात् इस मृत्यु और उसके बाद के जन्म, इन दोनों के बीच की उस दीर्घ-सुदीर्घ निद्रा में वह अपने को देवदूतों, स्वर्ग फरिश्तों से घिरा हुआ पावेगा, जो बराबर उसकी स्तुति कर रहे होंगे। कोई कारण नहीं कि वह अपने को उनके बीच में न पावे। वेदान्त कहता है, "ऐ ईसाइयो! यदि तुम भक्त हो, यदि तुम श्रद्धालु और सच्चे हो, तो तुम अपने धर्म ग्रंथों के

वचनों को पूरा होते देखोगे। किन्तु मुसलमानों और हिन्दुओं को बुरा न कहिये। (ये मुसलमान सच्चे, उत्साही और आप कह सकते हैं, कभी कभी कट्टर धर्मोन्मत्त होते हैं।) वही मुसलमान सच्चा मुसलमान है जिसने अपने जीवन के ७०-८० वर्ष की सम्पूर्ण जाग्रत अवस्था उसी तरह बितायी है जैसा मुहम्मद साहब का आदेश है, जो मुहम्मद साहब का चिन्तन और दर्शन करता रहा है, जो मुहम्मद के नाम पर दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता रहा है। मुसलमान २४ घंटों में पाँच बार नमाज पढ़ते हैं, बड़ी भक्ति और बड़े नियम के साथ, जो मुहम्मद के लिए अपनी जान देने को सदा तैयार रहा है, तब इस प्रकार के मुसलमान का क्या होगा? जिसके जीवन का स्वप्न रहा है मुसलमानियत का हित करना, दुनिया के इस सिरे से उस सिरे तक मुहम्मद की कीर्ति फैलाना! प्रकृति के नियमों के विरुद्ध कोई बात नहीं हो सकती। प्रकृति का नियम है कि जाग्रत अवस्था में हम जिसका स्वप्न देखते रहते हैं सोने पर भी वही वस्तु हमें स्वप्न में दिखाई देती है। वह जीवन भर मुहम्मद, बिहिश्त, आनन्द-कानन और हूरों एवं मद्य की नदियों का स्वप्न देखता रहा है, मौत के बाद उनकी प्राप्ति का वादा उसके धर्माचार्य ने किया था। वह सोचता रहा कि मरने के बाद उसे वैकुंठ के भव्य-भवनों और विलासिता की अटूट वस्तुओं की प्राप्ति होगी। वेदान्त कहता है, प्रकृति में ऐसा कोई नियम और शक्ति नहीं है जो उसे उस प्रकार के वैकुंठ का उपभोग करने से रोक सके जिसका स्वप्न वह आजीवन देखता रहा है। अवश्य उसको वैसा ही स्वर्ग देखने को मिलेगा, अपने धर्माचार्य के कथनानुसार वह अपने को वैसे

भी स्वर्ग में अवश्य पावेगा। अन्यथा नहीं हो सकता।

किन्तु वेदान्त कहता है, "ऐ मुसलमानो, तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि तुम इस दुनिया के मनुष्यों को, मृत्यु के बाद, अपने धर्माचार्य पैगम्बर के हवाले कर दो, उन्हें केवल मुहम्मद की दया का भिखारी बनाओ। ईसाइयों को भी अपनी कल्पनाओं का उपभोग करने दो, उन्हें स्वतंत्रता दो, उन सबको, जो यूरोप, अमेरिका, भारत, जापान और चीन में मरते हैं मुहम्मद के अधीन करने की इच्छा न करो। तुम्हें यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि यदि वे मुहम्मद में विश्वास करते हैं तब तो ठीक है, अन्यथा उनका अमंगल होगा। ऐसा दावा सर्वथा निर्दयतामूलक है। यदि आप हजरत मुहम्मद के अनुयायी हैं, तो आपको उसी प्रकार का स्वर्ग मिलेगा जैसा आप चाहते हैं। यही बात सब धर्मों के सम्बन्ध में है। यदि आप अपने धर्म सिद्धान्तों एवं लक्ष्य के प्रति सच्चे हैं, तो मृत्यु के बाद आपको उसी प्रकार के स्वर्ग की प्राप्ति होगी जिसकी आप आशा करते हैं। वास्तव में मृत्यु के बाद स्वर्ग या नरक आप ही पर निर्भर है। मृत्यु के बाद आप ही स्वर्ग बनाते हैं और आप ही नरक बनाते हैं। वास्तव में स्वर्ग और नरक आपके स्वप्नमात्र हैं, जो आपको उस समय सत्य जान पड़ते हैं, इससे अधिक उनका कुछ मूल्य नहीं। आप यह तो जानते ही हैं कि स्वप्न देखते समय स्वप्न हमें सत्य प्रतीत होते हैं। अतएव मृत्यु के बाद ये नरक और स्वर्ग भी आपको सच्चे प्रतीत होंगे, किन्तु वास्तव में यथार्थतः स्वप्नों से अधिक ये कुछ भी नहीं हैं।

एक बात और कही जा सकती है। लोग कहते हैं कि हमारे धर्म ग्रंथों ने जो वचन हमें दे रक्खे हैं यदि वे मृत्यु के

बाद सत्य उतरें तो हमें सर्वकालीन सुख की प्राप्ति होगी।
हमारे धर्मग्रंथ मृत्यु के बाद हमें या तो शाश्वत कल्याण या
शाश्वत अकल्याण मिलने का वचन देते हैं। यह कैसी बात
है? इसका अर्थ क्या है? वेदान्त कहता है, निश्चिता क्या
चीज है? आप सोचते हैं कि निश्चिता एक ऐसी वस्तु है
जिसका सम्बन्ध समय, अनन्त समय से है। आप यह भी
जानते हैं कि जाग्रत अवस्था का समय स्वप्न अवस्था के
समय से भिन्न होता है। जाग्रत अवस्था में समय एक
प्रकार का होता है और स्वप्नावस्था में दूसरी प्रकार का।
तुम्हारी स्वप्नावस्था में कभी कभी कोई ऐसी वस्तु आपके
सामने प्रकट होती है जो आप को पाँच हजार वर्ष की
पुरानी मालूम हो। मान लो कि अपने स्वप्न में आप एक
पहाड़ देखते हैं। अब इसमें सन्देह नहीं कि यह पहाड़ स्वप्न
में आपने स्वयं तुरन्त ही वहाँ ला खड़ा किया है, जाग्रत
अवस्था के दृष्टि-बिन्दु से तो यही कहना पड़ेगा किन्तु स्व-
प्नावस्था के दृष्टि बिन्दु से यह पहाड़ पाँच हजार वर्ष
पहले का मालूम होता है। वेदान्त कहता है कि मरण-पश्चात्
आप अपने को स्वप्नवत् स्वर्ग में अनन्तकाल से पायेंगे;
स्वप्न-दर्शी अधिष्ठान के दृष्टि-बिन्दु से आप अपने को स्वर्ग
या नरक में अनन्त काल से रहते पायेंगे, किन्तु जाग्रत अव-
स्था के अधिष्ठान के दृष्टि बिन्दु से नहीं।

यह सत्य है कि इंजील ने आप को जो वचन दिये हैं उन
सब को आप यथार्थ पावेंगे, क्योंकि उन हालत में आप
ऐसा सोचेंगे कि हम सदा से इसी हालत में रहते आये हैं।
यह अवस्था आपको नित्य प्रतीत होगी। स्वप्नदर्शी दशा के
दृष्टिबिन्दु से जो वस्तु नित्य है, वही जाग्रत दशा के दृष्टि-

विन्दु से नहीं के बराबर है। दोनों बातें सर्वथा पृथक हैं।

इस प्रकार आपको इस बात का कुछ पता लग जायगा कि वेदान्त किस तरह मृत्यु के बाद की अवस्था के विषय में विभिन्न धर्मों का समन्वय करता है।

अब आवागमन के सम्बन्ध में सोचिये! अच्छा, उन लोगों का क्या होता है कि जो मुक्त पुरुष, या मुक्त आत्मा कहलाते हैं। उनका आवागमन होता है, या नहीं। वेदान्त कहता है कि मृत्यु के बाद हरेक व्यक्ति को स्वर्ग और नरक के पड़ावों में होकर नहीं गुजरना पड़ता है, और न मृत्यु के बाद सबका पुनर्जन्म ही होता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं होता। वे जिन्हें मुक्त आत्मा कहते हैं कौन हैं? इन्हें पुनर्जन्म के अधीन नहीं होना पड़ता। वे स्वतंत्र हैं। नरकों और स्वर्गों में कैद नहीं होते हैं। स्वर्ग या नरक सभी उन में हैं। सारे लोक उनमें है। यहाँ इनके सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना जरूरी मालूम होता है।

स्वप्न में आप को दो प्रकार की वस्तुयें मिलती हैं—एक द्रष्टा और दूसरा दृश्य। ये सब नदियाँ, झील, पहाड़ और पहाड़िया, जिनसे आप स्वप्न में अपने आप को चारों ओर से घिरा हुआ पाते हैं, दृश्य पदार्थ हैं। और स्वप्नदर्शी द्रष्टा (आत्मा) जो अपने को घिरा हुआ पाता है, पथिक जैसा तीर्थयात्री और द्रष्टा है। स्वप्न में आप जानते हैं कि अनेकों चीजें दिखाई देती हैं। उनमें से एक तो वह होती है जिसे आप 'मैं' 'मैं' कहते हैं, और दूसरी वस्तुयें वे हैं जिन्हें आप पदार्थ कहते हैं, जो 'मैं' 'मैं' से पृथक होती हैं। यह जिसे आप 'मैं स्वयं अथवा आत्मा' कहते हैं द्रष्टा है, और दूसरी वस्तुयें जिन्हें आप मैं 'स्वयं नहीं' अथवा अनात्मा कहते हैं

दृश्य पदार्थ हैं। साधारणतः स्वप्न में ये दो मुख्य विभाग हुआ करते हैं, द्रष्टा और दृश्य। वेदान्त कहता है कि स्वप्न द्रष्टा और दृश्य आप ही की सृष्टि हैं, सच्चे आत्मा की सृष्टि, जाग्रत अवस्था के आत्मा की सृष्टि हैं। अंग्रेज़ी कोषकार डाक्टर जोहसन, जिसे आप जानते हैं, वाग्मियों का बादशाह कहलाता था, तर्क में परास्त होना कभी कबूल ही न करता था। अन्तिम बात सदा उसी की रहती थी, अन्तिम परिणाम सदा उसी के पक्ष में होता था। किसी ने उसके सम्बन्ध में यह कहा था कि यदि उसके तमंचे का निशाना चूक जाय तो वह उसके कुन्दे के बल से अपने प्रतिस्पर्धी को गिरा कर चित्त कर दे। सारांश यह कि वह सदा अपनी ही जीत रखता था, यदि कभी कोई तर्क में उससे प्रबल पड़ जाता, तो उससे बदला निकालने के लिए वह आकाश-पाताल एक कर देता था। एक बार उसने स्वप्न देखा कि व्याख्यान वाचस्पति एडमंड बर्क ने उसे तर्क में हरा दिया है। जोहसन जैसे प्रकृति के मनुष्य के लिए यह स्वप्न महा भयंकर जू जू के समान था। इसने चौंका दिया, वह जाग उठा। बड़ी बेचैनी में पड़ गया, उसे किसी तरह नींद ही न आती थी। आप जानते हैं कि आपके चित्त का यह गुण है कि वह सदा विश्राम चाहता है। जब वह बहुत व्याकुल होता है तो शान्ति की प्राप्ति उसके लिए अनिवार्य हो जाती है। इसका कारण यह है कि शान्ति ही चित्त का असली निवास-स्थल है, अपना घर वह ढूंढ़ता ही चाहे। इसलिए किसी न किसी तरह शान्ति का अन्वेषण डा० जोहसन के लिए बहुत ज़रूरी था। अन्त में उसने इस विचार से अपने को शांत किया कि यदि मैं एडमंड बर्क के

पास जाऊँ और कहूँ—रे वर्क ! मेरे स्वप्न में किस तर्क
तुमने मुझे हराया है, तो वह उस तर्क को दोहरा न सकेगा
स्वप्न में जो प्रबल तर्क उसने दिये हैं और जिन दुर्बल तर्कों
मेरी हार हुई, उनको मैं ही जानता हूँ। मैं दोनों पक्ष जान
हूँ। मैं विजयी और पराजित दोनों पक्षों को खूब जानता
किन्तु एडमंड वर्क उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। क्यों
कि मेरे ही दिमाग से दोनों पक्ष के तर्क पैदा हुए हैं, मैं
स्वयं एक ओर तो एडमंड वर्क के रूप में प्रकट हुआ और
दूसरी ओर पराजित जोह्नसन के रूप में।

बस, वेदान्त कहता है कि अपने स्वप्नों में आप स्व
ही एक ओर तो दृश्य पदार्थों के रूप में प्रकट होते हैं और
दूसरी ओर दृश्य पदार्थों के दृष्टा बन जाते हैं। सब तुम
हो; वह तुम्हारी असली आत्मा है जो एक ओर तो पहाड़
नदियाँ, जंगलों और पशु-पक्षियों के रूप में प्रकट होती
और दूसरी ओर चकित होनेवाले तीर्थयात्री के रूप में
तुम्हीं दृष्टा हो और तुम्हीं दृश्य हो।

इस प्रकार वेदान्त के अनुसार, मृत्यु के अनन्तर आ
वाली निद्रा में, आप ही नरक और आप ही स्वर्ग हो, औ
आप ही वह मनुष्य हो जो स्वर्ग के सुख भोगता है
नरक के दुख उठाता है। बस, इस तत्व का अनुभव क
और स्वतंत्र हो जाओ।

एक ऐसी नारी थी जिसे वेदान्त का यह ज्ञान प्राप्त थ
एक दिन एक हाथ में अग्नि और दूसरे हाथ में शीतल ज
लिये वह सड़क पर जा रही थी। लोगों ने उसके पास आ
कर पूछा: "एक हाथ में ठंढा पानी और दूसरे में अग्नि
चलने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है?" जिस मनुष्य ने उस

यह प्रश्न किया था वह एक धर्म-प्रचारक था। नारी ने कहा, "इस अग्नि से मैं आपके स्वर्ग और वैकुंठ में आग लगाऊँगी, और इस जल से मैं आपके नरक को ठंडा करूँगी।" जो मनुष्य सचमुच जानता है कि वह स्वयं नरक और स्वर्ग का स्वर्ग है, उसके लिए न आपके स्वर्ग से कोई प्रलोभन होता है और न आपके नरक से कोई भय। वह उनसे परे हो जाता है। धर्म प्रचारक निरुत्तर हो गया अब इस दुनिया पर आइये और जाग्रत अवस्था के बारे में सोचिये, जिस पर आप इतने लट्टू रहते हैं। वेदान्त सिद्ध करता है कि यह स्थूल ठोस मालूम पड़नेवाली दुनिया भी, यह पत्थर जैसी कठोर दुनिया भी अनन्य है, यह तुम्हारे स्वप्नों से भिन्न नहीं। भेद केवल दर्जे का है, तुम्हारी जाग्रत दुनिया भी एक स्वप्न है, यह एक ठोस और घनीकृत स्वप्न है। वेदान्त कहता है कि तुम्हारी इस सुदृढ़ प्रतीत होनेवाली दुनिया में द्रष्टा और दृश्य पदार्थ तुम्हारी सच्ची आत्मा की सृष्टि है, इससे अधिक कुछ नहीं। वह तुम्हारी सच्ची आत्मा ही है, जो एक ओर तो नगर, कस्बे, नदियां, तथा पहाड़ बन जाती है, और दूसरी ओर इस दुनिया में एक भूला-भटका, निराश्रय बटोही। जाग्रत अवस्था में भी जो द्रष्टा के रूप में प्रकट होता है वही दृश्य पदार्थ है, और जो दृश्य पदार्थ के रूप में प्रकट होता है वही द्रष्टा है।

मृत्यु में केवल द्रष्टा का बदला जाता है, और पदार्थ ज्यों के त्यों रहते हैं जैसे तुम स्वप्न देख रहे हो। मान लो कि तुम स्वप्नावस्था में अपने को बर्लिन नगर में पाते हो यद्यपि वास्तव में तुम सनफ्रांसिस्को में सोये हुए थे। अब तुम्हारे स्वप्न में बर्लिन क्या है और बर्लिन के [illegible]

रखने वाले सारे दृश्य क्या हैं? ये सब दृश्य पदार्थ थे और तुम बर्कले में रहने वाले द्रष्टा। अब यहां ध्यान दीजिये—कभी कभी हमें दोहरी निद्रा आती है, कभी कभी हमें नींद में स्वप्न में नींद आजाती है, ठीक वैसे जैसे चक्र-वृद्धि ब्याज होता है। यह एक स्वप्न में स्वप्न या दोहरा स्वप्न होता है। जैसे यदि तुम्हें बर्कले में निद्रा आती है, तो यह दोहरी निद्रा का दृष्टान्त है। क्या होता है? तुम फिर जागते हो। कभी कभी स्वप्न में हम जिस स्थान पर सोते हैं उसी स्थान पर एक लम्बे स्वप्न में फिर जाग पड़ते हैं। इसी तरह यहाँ तुम बर्कले लेटे हुए थे, स्वप्न में तुम अपने को बर्कले शहर में देखते हो। बर्कले शहर पदार्थ दृश्य है और तुम द्रष्टा हो। फिर द्रष्टा सो गया, दृश्य पदार्थ बर्कले वहीं बना रहा, द्रष्टा मानो दबक गया और फिर कुछ काल बाद उठ बैठा। तुमने अपने को फिर बर्कले में पाया, किन्तु तुम्हारी नींद ठीक जैसी की तैसी जारी रहती है। अब बर्कले से तुम लोजेंजिलस गये। वहाँ लोजेंजिलस में तुम्हारे मित्र का मकान आदि पदार्थ दृश्य हुए और तुम द्रष्टा। मानो वहाँ द्रष्टा फिर सो जाता है और फिर जागता है। लोजेंजिलस में एक झपकी लेने के बाद तुम लिक आबजर्वेटरी (वेधशाला) में भी एक झपकी लेने लगते हैं। लिक आबजर्वेटरी दृश्य हुई और तुम द्रष्टा हुए। कुछ देर के लिए द्रष्टा सोकर दबक जाता है, और फिर उठता है। लिक आबजर्वेटरी से तुम ग्रीष्मावास में जाते हो, और तुम जब ऐसा स्वप्न देख रहे हो तब तुम्हारे कुटुम्ब के कोई सज्जन आकर तुमको जगा देता है। यहाँ आपही ग्रीष्मावास थे और आपही उस ग्रीष्मावास का सुख भोगनेवाले व्यक्ति भी। जब आप जाग पड़ते हो तो द्रष्टा और दृश्य

पदार्थ दोनों चल बसते हैं, दोनों गायब हो जाते हैं। द्रष्टा और दृश्य दोनों ही लुप्त हो जाते हैं। किन्तु जब आप स्वप्न में सोते और उठते थे, तब केवल द्रष्टा द्वबकना था और दृश्य पदार्थ ज्यों के त्यों बने रहे थे। तुम असलियत में पूरे नहीं जागे थे।

अब इस दृष्टान्त को घटाइये। वेदान्त के अनुसार यह विश्व, यह विशाल संसार भी एक स्वप्न है। इस विशाल दुनिया के स्वप्न में सारा देश, काल और वस्तु (कार्य-कारण सम्बन्ध) यह समस्त विश्व जिसे आप अपने बाहर देखते हैं, दृश्य पदार्थ हैं; और जिसे आप "मेरा शरीर", मेरा तुच्छ अपना आप कहते हैं, वह भी पदार्थ जैसा है। जब एक साधारण मनुष्य मर जाता है, तब क्या होता है? माया या अविद्या का लम्बा स्वप्न भंग नहीं होता ज्यों का त्यों चलता है, वह मरता है। मृत्यु का अर्थ केवल द्रष्टा का दुबक जाना, लुप्त हो जाना है, दृश्य पदार्थ वहीं का वहीं बना रहता है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। सो जब एक मनुष्य यहाँ मरता है, और दूसरे जन्म में फिर जगता है तो वह वही संसार अपने चारों ओर पाता है जिसे वह मरते समय बहुत प्यार करता था। मान लो कि इस दूसरे जन्म में यह मनुष्य ८०-६० साल जीता है, और फिर मर जाता है। दूसरे जन्म में जो बर्कले या लॉजेंजिलस शहर के तुल्य है, दृश्य पदार्थ वही बना रहता है, केवल द्रष्टा कुछ देर के लिए लुप्त हो जाता है। परिणाम मे कुछ समय के बाद वह फिर पैदा होता है। इस तीसरी जिन्दगी में वह फिर ८० या ८० वर्ष जीता है, और तदुपरान्त मर जाता है। यहाँ उदाहरण की भाँति दृश्य पदार्थ जो लिक वेधशाला

के समान है, वह ज्यों का त्यों बना रहता है; और दृष्टा दबक कर तिरोधान हो जाता है, और पुनः प्रकट होता है। इस प्रकार जन्म और मृत्यु का यह सिलसिला तब तक जारी रहता है जब तक दृष्टा और दृश्य दोनों एक साथ ही न दब जायँ, लुप्त न हो जायँ। जब तक दुनिया आपको अपने से भिन्न मालूम पड़ती है, तब तक आप इस संसार में कैदी हैं, आप सदा आवागमन, इस जन्म और मृत्यु के चक्र में बँधे रहेंगे। तुम्हारे इर्दगिर्द यह पहिया और तुम्हें कुचलता ही रहेगा, तुम्हें कभी ऊपर और कभी नीचे ले जायगा। आपको कभी विश्राम या शान्ति न मिल सकेगी।

अब वेदान्त की बात सुनिये। बचता वही है जो अपने आप ही में दृष्टा और दृश्य दोनों पा लेता है। जब जागने पर हमें डाक्टर जाहसन की तरह इस ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है कि हम ही स्वप्न के दृष्टा हैं, और हम ही पदार्थ, तब हम मुक्त हो जाते हैं। दुनिया मेरा शरीर है, सम्पूर्ण विश्व मेरा शरीर है, जो ऐसा कह सकता है वही आवागमन के बन्धन से मुक्त है। वह कहाँ जा सकता है, कहाँ से आ सकता है? कोई स्थान ऐसा नहीं जो उससे परिपूर्ण न हो. वह तो अनन्त है। वह कहाँ जायगा? कहाँ से आवेगा? सारा विश्व ब्रह्मांड उसमें है। वह प्रभुओं का प्रभु है, आवागमन के बन्धन से मुक्त। भारतवर्ष का हरेक बच्चा माता के दूध के साथ मानो इस एक इच्छा को पिया करता है कि मैं आत्म - अनुभव प्राप्त करके आवागमन के चक्र से छूट जाऊँ, मुझे बार-बार जन्म मरण में फँसना पड़े और ईश्वरीय ज्ञान. ब्रह्मानुभूति में निवास कर परमानन्द और परम कल्याण की प्राप्ति कर सकूँ।

मिलटन की जीवनी में एक महिला के सम्बन्ध में, उसकी स्त्री के सम्बन्ध में, एक बड़ी सुन्दर कथा दी हुई है। उस स्त्री ने स्वप्न में अपने पति को देखा, उसका हृदय पति के लिए छटपटाने लगा। उसने उसे अंक में भरकर कहा, "मेरे प्यारे स्वामिन्! मैं सर्वथा तुम्हारी हूँ, पूर्णतः तुम्हारी।" ठीक इसी क्षण उसकी आँख खुल गई। और उसने देखा कि जो कुत्ता उसके पलंग पर सोया हुआ था अपना शरीर उसके शरीर से सटा रहा है। स्त्री के जगने पर कुत्ता बिस्तरे से उछल कर भागने लगा। वास्तव में कुत्ते की दाब या लिपटाव से उसे स्वप्न में अपने पति की दाब या लिपटाव की प्रतीति हुई थी। यदि कुत्ता अपने पूर्ण बल से चिपटा होता और वह जागी न होती तो उसे एक महान् हिमालय अपनी छाती पर प्रतीत होता। वेदान्त कहता है जब तक अविद्या का कुत्ता, माया का कुत्ता तुम्हें नीचे दबोचे रहता है, तबतक तुम्हारे स्वप्न निरन्तर कभी अच्छे से बुरे और कभी बुरे से अच्छे रूप में बदलते रहते हैं. कभी तुम्हें पति की प्रतीति होगी और कभी प्रबल हिमालय की। आँसू और मुसक्यान के बीच तुम सदा लटकन की तरह भूलते रहोगे, संसार तुम्हारे दिल पर बोझ समान पड़ा रहेगा, तुम्हें चैन का नाम न मिलेगा। वेदान्त कहता है, "अविद्या के इस कुत्ते से अपना पिण्ड छुड़ाओ, अपने को सर्वशक्तिमान परमेश्वर बनाओ, अपने को ब्रह्म बनाओ, ब्रह्मरूप से अनुभव करो और तुम एकदम मुक्त हो।

चाहे हजारों रूपों में तू मुझे चकित करे, तथापि ऐ मेरे प्यारे! मैं तुझे अच्छी तरह पहचानता हूँ, तू अपने चेहरे को चाहे आड़ से छिपावे, पर मुझसे छिप नहीं सकता।

वेदान्त और समाजवाद

सबसे पहले समाजवाद (Socialism) नाम के विषय में ही कुछ कहना है, राम उसे व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद (Individualism) कहना अधिक पसन्द करेगा। समाजवाद का नाम समाज के शासन की कल्पना को प्राधान्य देता है, किंतु राम कहता है कि सत्य का यथार्थ तत्व तो यह है कि व्यक्ति को ही सारी दुनिया, सम्पूर्ण विश्व और ब्रह्मांड के समस्त प्राधान्य दिया जाय। जहाँ न कोई हैरानी हो, न कोई चिन्ता और न कोई झंझट। इसी को राम व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद कहता है, लोगों की यदि इच्छा हो तो वे उसे समाजवाद, समष्टिवाद चाहे जो कहें पर व्यक्ति के स्थिति बिन्दु से वेदान्त की शिक्षा ऐसी ही है।

दूसरी बात जिस पर ध्यान देना है, यह है कि यथा कथित समाजवाद का लक्ष्य पूँजीवाद के गढ़ को ढा देना है। और इस बात में वह वेदान्त के लक्ष्य से पूर्णतः एकमत है, क्योंकि वेदान्त भी आपको साधारणतः स्वामित्व के हर प्रकार के भाव से रहित कर देना चाहता है। वेदान्त सम्पत्ति के भाव, संग्रह के भाव तथा स्वार्थपूर्ण अधिकार के भाव को हवा में उड़ा देना चाहता है। यही वेदान्त है और यही समाजवाद है। दोनों के लक्ष्य एक हैं।

वेदान्त समता की शिक्षा देता है, और यही लक्ष्य निस्संदेह सच्चे समाजवाद का है। समाजवाद में भी बाहरी सम्पत्तियों के लिए कोई सम्मान, कोई आदर, और कोई इज्जत नहीं है। यह आदर्श बहुत ही विकट और बड़ा ही कठोर सा जान पड़ता है, किन्तु जब तक मनुष्य सम्पत्ति के भावों और अधिकारों को, मोह और आसक्ति को सम्पूर्णतः त्याग नहीं देता, तब तक पृथिवी पर कोई सुख और आनंद विद्यमान नहीं हो सकता। परन्तु समाजवाद केवल इतना ही चाहता है कि मनुष्य इन सब बातों को त्याग दे, और वेदांत ऐसा करने के लिए एक महान् कारण भी बतलाता है। यथाकथित समाजवाद तो वस्तुओं के केवल ऊपरी सितह, बाह्य रूप का ही अध्ययन करता है, और इस परिणाम पर पहुँचता है कि मानव जाति को समता, बन्धुत्व और प्रेम के आधार पर जीवन बिताना चाहिए। वेदान्त इस दृश्यमय जगत् का अध्ययन स्वाभाविक और आन्तरिक दृष्टिकोण से करता है। वेदान्त के अनुसार किसी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकार जमाना अपनी आत्मा, आन्तरिक स्वरूप के विरुद्ध पापाचार करना है। वेदान्त के अनुसार मनुष्य का एकमात्र अधिकार केवल अर्पण करना है, लेना या मांगना-याचना नहीं। यदि तुम्हारे पास देने को और कुछ नहीं है, तो अपनी देह ही कीड़ों के खाने के लिए दे दो। जो कुछ तुम्हारे पास है उसका कोई मूल्य नहीं, उसके कारण तुम्हें कोई भी धनी नहीं कह सकता। जो कुछ तुम दे डालते हो उसी से तुम अमीर होते हो। हरेक व्यक्ति काम करे किसी वस्तु का स्वामी बनने के लिए नहीं, किन्तु हरेक वस्तु को दे डालने के लिए। दुनिया सबसे बड़ी भूल यह करती है कि

वह लेने में सुख का भाव मानती है। वेदान्त चाहता है कि आप सत्य को पहचानें और अनुभव करें कि सुख सबका सब देने में है, और लेने या माँगने में नहीं। ज्योंही तुम माँगने या भिक्षा की वृत्ति को अपने अन्दर प्रवेश होने देते हो, उसी क्षण तुम अपने आपको संकीर्ण या संकुचित बना डालते हो और अपने अन्दर के आनन्द को बाहर निचोड़ देते हो। आप चाहे जहाँ हों, दाता के रूप में काम करें और भिखारी के रूप में कदापि नहीं, तभी आपका काम विश्वव्यापी काम होगा और उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ की गन्ध न पैठ सकेगी।

भारत के वेदान्तवादी साधु आज भी ऐसा समाजवादी जीवन हिमालय के पर्वतों पर व्यतीत करते हैं, ऐतिहासिक काल के पूर्व से ही वे ऐसा जीवन व्यतीत करते आये हैं। वे कड़ी मेहनत करते हैं, वे निठल्ले नहीं रहते, वे आरामतलब और विलासी नहीं होते, क्योंकि उन्हीं के प्रयत्नों से भारत के उस विशाल और महान् साहित्य की सृष्टि है। यही लोग भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि, नाट्यकार, वैज्ञानिक, तत्वज्ञानी वैयाकरणी, गणितज्ञ, ज्योतिर्विद्, रसायनशास्त्री, आयुर्वेदज्ञ हुए हैं, और ये वे लोग हैं जिन्होंने रुपया कभी छुआ नहीं। ये ही वे लोग हैं जिन्होंने यथासाध्य कठोरतम जीवन व्यतीत किया है। इससे समाजवाद पर लगाया जानेवाला यह कलंक धुल जाता है कि वह लोगों को कायर, आलसी और परावलम्बी बना देगा। काम वही खूब कर सकता है जो अपने को स्वतन्त्र समझता हो।

वेदान्त और समाजवाद के भी अनुसार आपको अपने

बच्चों, स्त्री, घर-बार या अन्य सभी वस्तुओं पर अधिकार जमाने का कोई हक नहीं है।

सभ्य समाज के माथे पर यह एक कलंक का टीका लगा हुआ है कि स्त्री वाणिज्य की वस्तु बनी हुई है और मनुष्य उसी अर्थ में उस पर अपना अधिकार जमाता और शासन करता है, जैसे वृक्षों पर, घरों पर या रुपया-पैसा पर। इस प्रकार सभ्य समाज में नारी को जड़ पदार्थों जैसी स्थिति हो गई है, तथा नारी के हाथ और पैर दोनों बांध दिये गये हैं जबकि मनुष्य अपने कामों में स्वतंत्र है। स्त्री कभी एक मनुष्य की सम्पत्ति हो जाती है, कभी दूसरे की। समाजवाद और वेदान्त के भी अनुसार यह स्थिति अति विचित्र जान पड़ती है किन्तु नारी को अपनी स्वाधीनता ठीक उसी तरह पहचानना और पकड़ना चाहिए जिस तरह मनुष्य पहचानता और पकड़ता है। वह उतनी ही स्वाधीन है जितना कि मनुष्य। हाँ, यदि मनुष्य को किसी वस्तु पर अपने अधिकार रखना ठीक नहीं है तो नारी को भी किसी वस्तु पर अधिकार न जमाना चाहिए। अपना आनन्द स्थिर रखने के लिए उसे भी अपने पति पर स्वत्व जमाने का कोई अधिकार न होगा। यहाँ पर समाजवाद के विरुद्ध एक गंभीर आपत्ति उठती है। यदि समाजवाद नर और नारी को पूर्ण स्वाधीनता दे देता है तो वह समाज को पशुता की अवस्था में ले आवेगा, और दुनिया को लम्पटों और दुराचारियों की दुनिया बना देगा। राम कहता है कि नर और नारी के लिए स्त्री-पुरुष के संबंध के विषय में इससे उत्तम और कुछ हो नहीं सकता। गाय और भैंस जैसे पशु अपने कामव्यवहार में बड़े ही बुद्धि-संगत होते हैं, अपने इस बर्ताव में वे बड़े

ऋतु-संगत और युक्ति-संगत होते हैं। यदि मनुष्य भी उसी ढँग से वर्ताव करे, तो सभ्य समाज की सारी कामुकता और मनोविकारों का अन्त हो जाय।

कैसा आश्चर्य है! कामासक्त पुरुष को पशु कह कर हम कैसी भयंकर भूल करते हैं, जब कि पशु निस्सन्देह मनुष्यों से कम कामासक्त होते हैं। उनमें अनुचित काम-विकार का लेशमात्र नहीं होता। जब उन्हें सन्तानोत्पति करना होती है, तभी वे मैथुन करते हैं। मनुष्य का यह हाल उलटा है। जो मनुष्य शान्त और विकारहीन है वह कामी मनुष्य की अपेक्षा पशुओं जैसा जीवन अधिक व्यतीत करता है। अतः कामासक्त मनुष्य को पशु नहीं कहना चाहिये, पशु तो आजकल का सभ्य मनुष्य है—यह हमारी सभ्यता की विशेषता है, न कि प्रारम्भिक असभ्य समाज की। असभ्य लोग तो स्वाभाविक और बुद्धि-संगत होते थे। उनका हरेक कार्य ऋतु में और नियत समय पर होता था। वेदान्त और समाजवाद के अनुसार जितनी अधिक विकार हीनता और नैसर्गिक शान्त अवस्था की प्राप्ति होगी, उतनी इन उत्तेजक मनोविकारों की कमी होगी, और साथ ही साथ मनुष्य में पति या स्त्री और पिता या पुत्र का स्वत्वाधिकार जमानेवाला भाव भी न रहेगा।

"हमें इस बच्चे या इस स्त्री अथवा इस बहन की चिन्ता करना है," निरन्तर ऐसी भावना का बोझ मनुष्य को अपने अध्ययन या अपने ब्रह्मत्व का अनुभव करने में बाधक होता है। समाजवाद या वेदान्त तुम्हारी छाती पर से ऐसी दशा में से यह बोझ हटा देना चाहता है, तुम्हें स्वच्छन्द कर देना चाहता है। जब तुम किसी अन्वेषण के सागर में उतरते

हो, तो तुम विजय-पताका उड़ाते हुए बाहर निकलते हो। जब तुम किसी अनुसन्धान की रंगभूमि में प्रवेश करते हो, तो तुम पूर्ण कृतकार्य निकलते हो. यदि तुम स्वच्छन्दता से, पाशमुक्त होकर सब प्रकार के बन्धनों और चिन्ताओं से मुक्त होकर काम करते हो, हर समय तुम अपने का आनन्द समझते हो, यदि तुम निश्चयपूर्वक इस विशाल जगत् को अपना घर समझते हो।

हमें करना केवल इतना ही है कि लोग यह समझ जायें कि उनके रोगों और विपत्तियों की एकमात्र दवा दूसरों पर स्वत्व जमाने की कल्पना को दूर कर देना है। एकबार जब भारी जनसमुदाय इस बात को समझ लेगा तो समाजवाद सारे संसार में वन-वह्नि की तरह फैल जायगा। यही वेदांत तक-समाजवाद उन सब रोगों की एकमात्र औषधि है। एक बार जहाँ यह वेदान्त-समाजवाद दुनिया की समझ में आगया तहाँ यह स्वर्ग बन गई। उस समय हमारी उलटी दृष्टि तथा आस पास की परिस्थिति के परिच्छिन्न ज्ञान से उत्पन्न होनेवाली आपत्तियाँ गायब हो जायँगी। इस समाजवाद की दशा में बादशाहों, राष्ट्रपतियों, धर्माचार्यों की जरूरत नहीं है, सेनाओं की भी कोई आवश्यकता नहीं है। विश्वविद्यालयों की भी कोई जरूरत न पड़ेगी, क्योंकि हरेक मनुष्य स्वयं अपना विश्वविद्यालय आपही होगा। हम ऐसे पुस्तकालय रक्खेंगे जिनमें हरेक मनुष्य जाकर पढ़ सकेगा। अध्यापक न होंगे, सिवाय छोटे बच्चों के लिए। डाक्टरों की जरूरत न होगी, क्योंकि वेदान्त के उपदेशानुसार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने से आप कभी बीमार ही नहीं पड़ सकते, फिर आपको डाक्टर क्यों चाहिए! लोग चाहे जो करेंगे, उन्हें

जी चाहेगा घूमेंगे, आज की तरह अपने भाईयों का डर उन्हें न होगा, वे भलाई करेंगे और वास्तव में हितकारी अध्ययनों, तत्वज्ञानों और अध्यात्म के अनुसन्धानों में अपना समय लगावेंगे, जिससे अपने ब्रह्मत्व और परमेश्वरत्व का पूर्णतम अनुभव करते हुए वे जीवनमुक्त हो सकें।

ॐ !　　ॐ !!　　ॐ !!!

स्वामी राम के वचन

भारतवर्ष का पतन वेदान्त के अभाव से हुआ।

+ + +

वेदान्त हमें शक्ति और बल प्रदान करता है; न कि कमजोरी और शिथिलता।

+ + +

वेदान्त रसायन विद्या के समान प्रयोगात्मक विज्ञान है।

+ + +

यदि बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य आध्यात्मिक प्रयोग नहीं करता तो वह वेदान्त के विषय में कुछ नहीं जान सकता।

+ + +

जंगलों में वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करके साधक को संसार में आकर काम करना चाहिए और उसे अपने दैनिक जीवन में उतारना चाहिए।

+ + +

वेदान्त निराशावाद नहीं है, वह तो आशावाद का सर्वोच्च शिखर है!

+ + +

यदि आप वेदान्त का साक्षात् कर लेते हैं तो नरक भी आपके लिए स्वर्ग बन जायगा। जीवन सचमुच जीने योग्य होगा, कभी कोई चिन्ता, कोई परेशानी नहीं हो सकती। चित्त सदैव एकाग्र, प्रसन्न, तत्पर और प्रफुल्ल रहेगा।

+ + +

तुम परम निर्गुण सत्य हो जिसमें यह समस्त संसार, समस्त ब्रह्मांड केवल लहरों या भवरों के समान है। उस सत्य का साक्षात् करो और स्वतन्त्र हो जाओ सर्वथा मुक्त।

+ + +

राम आपको स्वतन्त्रता, विचार-स्वतन्त्रता, कार्य-स्वतन्त्रता प्रदान करता है। आपको बन्धन-मुक्त करता है।

+ + +

अपने विश्वासों के पीछे मरने की अपेक्षा उनके लिए जीवित रहना कठिन है।

+ + +

यदि दर्शनशास्त्र का लक्ष्य यह हो कि हम शान्तिपूर्वक मृत्यु का आलिंगन कर सकें तो उसके लिए वेदान्त दर्शन के अध्ययन से बढ़कर और कोई तैयारी नहीं हो सकती।